भगवान् महावीर

और

उनका समय

लेखक—

जुगलकिशोर मुख्तार ।

अर्हम्

भगवान् महावीर और उनका समय

(संशोधित और परिवर्धित)

लेखक—

पंडित जुगलकिशोर मुख़्तार
सरसावा ज़िला सहारनपुर

[ग्रन्थपरीक्षा ४ भाग, स्वामी समन्तभद्र, जिनपूजाधिकारमीमांसा, उपासनातत्त्व, विवाहसमुद्देश्य, विवाहक्षेत्रप्रकाश, जैनाचार्योंका शासनभेद, वीरपुष्पांजलि, हम दुखी क्यों हैं, मेरीभावना और सिद्धिसोपान आदि अनेक ग्रंथोंके रचयिता ।]

प्रकाशक—
हीरालाल पन्नालाल जैन,
दरीबा कलाँ, देहली ।

प्रथमावृत्ति हज़ार प्रति | चैत्र, वीरनि० संवत् २४६० मार्च १९३४ | मूल्य चार आने

गयादत्त प्रेस, बाग-दिवार देहलीमें मुद्रित ।

विषय-सूची

विद्वानोंकी कुछ सम्मतियाँ

(१) साहित्याचार्य पं० विश्वेश्वरनाथजी, रेऊ—

"लेख 'भगवान महावीर और उनका समय' खोजपूर्ण है।"

(२) महर्षि शिवव्रतलालजी वर्मन, एम.ए.,—

"महावीर चरित्रका मुख़्तसिर ख़ाका बहुत अच्छा खींचा गया है। ला० जुगलकिशोर साहिब मुख़्तार बहुत क़ाबिल और वाक़िफ़कार आदमी मालूम होते हैं।"

(३) आर० वेंकटाचल आइयर, थिरुनगलम्—

"लेख और उसके अन्तर्गत 'महावीर-सन्देश' ने मेरे मनमें गंभीरतम भावोंको जाग्रत किया है।"

(४) बाबू भगवानदासजी, एम.ए., चुनार—

"लेख पढ़कर मैं बहुत प्रसन्न हुआ। इस नई बुद्धिसे पुराने विषयोंका प्रतिपादन किया जाय तो उनमें पुनः प्राणसंचार हो और वे सचमुच इह-अमुत्र उपयोगी हों जहाँ अब प्रायः उभय बाधक हो रहे हैं।"

(५) बा० ज्योतिप्रसादजी सम्पादक 'जैनप्रदीप' देवबन्द—

"लेख बहुत ही रुचिकर और लाभदायक है ... अत्युत्तम है बड़ी खोजके साथ लिखा गया है।"

(६) पं० कैलाशचन्द्रजी शास्त्री, बनारस—

"लेख बहुत महत्व एवं गवेषणापूर्ण है।"

(७) पं० लोकनाथजी शास्त्री, मूडबिद्री—

"आपका ऐतिहासिक दृष्टिसे लिखित महावीरचरित्र ... माननीय है।"

(८) पं० देवकीनन्दनजी सिद्धान्तशास्त्री, कारंजा—

"लेख बहुत ही खोजपूर्वक लिखा है। आपके साहित्यकी जो विशेषता है वह किसी विषयमें मतभेदके रहते हुए भी हमें आदरणीय प्रतीत होती है। आपके साहित्यसे नई शिक्षासे भूषित व्यक्तियोंका पूर्ण रीतिसे स्थितिकरण होता है और उससे जैनधर्मके विषयमें श्रद्धाकी भी वृद्धि होती है।

(९) सम्पादक 'जैनमित्र' सूरत—

"लेख बहुत विद्वत्तापूर्ण और उपयोगी है।"

(१०) सम्पादक 'जैनजगत्' अजमेर—

"लेख है तो लम्बा परन्तु आवश्यक है।"

(११) श्रीसुलतानमलजी सकलेचा, विल्लुपुरम् (मद्रास)—

" 'भगवान् महावीर और उनका समय' शीर्षक लेख बहुत ही महत्वपूर्ण है।"

नोट—पं०नाथूरामजी प्रेमी आदि दूसरे कई विद्वानोंकी सम्मतियों के लिये 'प्राक्कथन' देखिये।

—प्रकाशक

प्राक्कथन

यह निबन्ध २१ अप्रेल सन १९२९ को लिखकर समाप्त हुआ था और उसी दिन चैत्रशुक्ला त्रयोदशीको देहलीमें महावीर जयन्ती के शुभ अवसर पर पढ़ा गया था। उसके बाद नये प्रकट होनेवाले 'अनेकान्त' पत्र के लिये इसे रिज़र्व रख छोड़ा था और यह उस पत्रकी प्रथम किरणमें २२ नवम्बर सन १९२९ को सबसे पहले प्रकाशित हुआ था। 'अनेकान्त' में प्रकाशित होने पर बहुतसे प्रतिष्ठित जैन अजैन विद्वानोंने इसका खुला अभिनन्दन किया था और इसे अपनी सम्मतियोंमें स्पष्ट रूपसे एक बहुत ही महत्वपूर्ण, खोजपूर्ण, गवेषणापूर्ण, विद्वत्तापूर्ण, अत्युत्तम, उपयोगी, आवश्यक और मननीय लेख प्रकट किया था। विद्वानोंकी इन सम्मतियोंका बहुतसा हाल 'अनेकान्त'की प्रथम वर्षकी फ़ाइलसे जाना जा सकता है, जिसमें कितनी ही सम्मतियाँ 'अनेकान्त पर लोकमत' आदि शीर्षकोंके नीचे ज्योंकी त्यों उद्धृत की गई हैं।

इस निबन्धके दो विभाग हैं-एक भगवान महावीरके जीवन और शासनसे सम्बंध रखता है, दूसरा उनके समयके विचार एवं वीरनिर्वाण-संवत्के निर्णयको लिये हुए है। पहले विभागमें महावीरका संक्षेपतः आवश्यक परिचय देनेके साथ साथ देशकालकी परिस्थितिके उल्लेखपूर्वक महावीरके उद्धारकार्य और उनके शासनकी विशेषतादिका प्रदर्शन किया गया है और उन सब पर यथेष्ट प्रकाश डाला गया है। पिछले विभागमें प्रचलित वीर-निर्वाण-संवत्को अनेक युक्तियों तथा प्रमाणोंके आधार पर सत्य सिद्ध किया गया है। इससे पहले प्रचलित वीरनिर्वाण-संवत् बहुत कुछ विवादग्रस्त चल रहा था, अनेक विद्वानोंकी उस पर आपत्तियाँ थीं और वे अपनी

अपनी समझके अनुसार उसके संशोधनका परामर्श दे रहे थे। मैं खुद भी इसके विषयमें सशंकित था, जैसाकि मेरे लिखे 'स्वामी समन्तभद्र' नामक इतिहाससे प्रकट है। परन्तु उस वक्तसे मेरा बराबर प्रयत्न ऐसी साधन-सामग्रीकी खोजका रहा है जिससे महावीरके समयका बिलकुल ठीक निश्चय होजाय। उसी खोजका सफल परिणाम यह निबन्धका उत्तरार्ध है और इसके द्वारा पिछली अनेक भूलों, त्रुटियों, ग़लतियों अथवा शंकाओंका संशोधन हो गया है। जहाँ तक मुझे मालूम है प्रचलित वीरनिर्वाण-संवत्को इतने युक्तिबलके साथ सत्य प्रमाणित करनेवाला यह पहला ही लेख था। इसके प्रकट होने पर इतिहासके सुप्रसिद्ध विद्वान् पं० नाथूरामजी प्रेमीने लिखा था "आपका वीरनिर्वाण संवत्-वाला (महावीरका समय) लेख बहुत ही महत्वका है और उससे अनेक उलझनें सुलझ गई हैं"। मुनि श्रीकल्याणविजयजीने सूचित किया था—"आपके इस लेखकी विचारसरणी भी ठीक है" और पंडित बसन्तलालजीने इटावामें लिखा था "वीर-संवत्-सम्बन्धी लेख छोटा होने पर भी बड़े मार्केका है। यह लेख उन विद्वानोंको जो इस विषयमें काफ़ी तौरसे सशंकित हैं स्थिर विचार करने में काफ़ी सहायता देगा"। इस निबन्धके प्रकाशित होनेसे कोई छह महीने बाद—मई सन् १९३० में—मुनि श्रीकल्याणविजयजीका 'वीरनिर्वाणसंवत् और जैनकालगणना' नामका एक विस्तृत निबन्ध नागरी प्रचारिणी पत्रिकाके १०वें भागके ९वें अंकमें प्रकट हुआ, जिसमें बहुत कुछ ऊहापोहके साथ प्रचलित वीरनिर्वाणसंवत् पर की जाने वाली आपत्तियोंका निरसन करते हुए उसकी सत्यताका समर्थन किया गया। साथही स्पष्टरूपमें यह सूचना भी की गई कि प्रचलित वीरनिर्वाण-संवत्के अंकसमूहको गतवर्षोंका वाचक समझना

चाहिये—वर्तमान वर्षका द्योतक नहीं। और वह हिसाबसे—महीनोंकी भी गणना साथमें करते हुए—ठीकही है। बादको बाबू भोलानाथजी मुख्तार और पं०कैलाशचन्द्रजी शास्त्री आदिके और भी कुछ लेख प्रकृत विषयका समर्थन करते हुए प्रकट हुए हैं। और इस तरह उस वक्तसे प्रचलित वीरनिर्वाण-संवत्की सत्यताका विषय बराबर निर्विवाद होता चला जाता है, यह बड़ी ही प्रसन्नताका विषय है।

मेरे इस निबन्धको पुस्तकरूपमें देखनेके लिये कितनेही सज्जन बहुत समय से उत्कंठित थे। मैं भी नई मालूमातके आधार पर इसमें कुछ संशोधन तथा परिवर्धन कर देना चाहता था, जिसका मुझे अभी तक अवसर नहीं मिल रहा था। हालमें उत्साही नवयुवक बाबू पन्नालालजीने छपानेके लिये निबन्धकी संशोधित कापी मांगी. उनके इस अनुरोधको पाकर मुझे संशोधनादिके कार्यमें प्रवृत्त होना पड़ा और कितना ही नया परिश्रम करना पड़ा। संशोधनके अवसर पर इसके दोनों विभागोंमें यथा स्थान **धवल** और **जयधवल** नामक सिद्धान्त ग्रन्थोंके भी कितने ही प्रमाणोंका समावेश किया गया है, जिनका परिचय मुझे उक्त ग्रन्थोंके अवलोकनसे कुछ समय पूर्व ही हुआ है और जिनसे इस निबन्धकी उपयोगिता और भी ज्यादा बढ़ गई है। इसतरह मैंने इस निबन्धमें कितना ही संशोधन तथा परिवर्धन करके इसे अप-टु-डेट बना दिया है, और इसलिए अब यह अपने इस संशोधित तथा परिवर्धित रूपमें ही पाठकोंके हाथोंमें जा रहा है। आशा है सहृदय पाठक इससे विशेष लाभ उठाएँगे—भगवान् महावीरके जीवन, मिशन एवं शासनके महत्त्व को ठीक तौर पर समझेंगे और उनकी शिक्षाओंको जीवनमें उतारकर अपना तथा देशका हितसाधन करनेमें समर्थ होंगे। साथ

ही, महावीरके समय-सम्बन्धमें यदि कोई भ्रम होगा तो उसका सहज हीमें संशोधन भी कर सकेंगे।

इस निबन्धका पूर्वार्ध साधारण जनतामें अधिकताके साथ प्रचार किये जानेके योग्य है और इस दृष्टि से 'भगवान महावीर' शीर्षकके साथ उसे अलग भी छपाया जा सकता है।

अन्तमें मैं उन सभी लेखकोंका हृदयसे आभार मानता हूँ जिनके लेखों अथवा ग्रन्थादिक परसे इस निबन्धके लिखने तथा संशोधनादि करनेमें मुझे कुछ भी सहायताकी प्राप्ति हुई है। साथ ही, प्रकाशक महाशय बाबू पन्नालालजीका आभार माने विना भी मैं नहीं रह सकता, जिनके उत्साह और अनुरोधके विना यह पुस्तक इस रूपमें इतनी शीघ्र शायद ही पाठकोंकी सेवामें उपस्थित हो सकती।

सरसावा जि. सहारनपुर
ता० १६-२-१९३४

जुगलकिशोर मुख्तार।
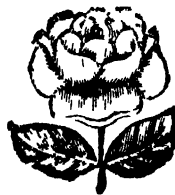
भ० महावीर और उनका समय

शुद्धिशक्त्योः परां काष्ठां योऽवाप्य शान्तिमन्दिरः ।
देशयामास सद्धर्म्मं महावीरं नमामि तम् ॥

महावीर-परिचय

जैनियोंके अन्तिम तीर्थंकर भगवान महावीर विदेह-(विहार-) देशस्थ कुण्डपुर* के राजा 'सिद्धार्थ'के पुत्र थे और माता 'प्रियकारिणी'के गर्भसे उत्पन्न हुए थे, जिसका दूसरा नाम 'त्रिशला' भी था और जो वैशालीके राजा 'चेटक'की सुपुत्री × थी। आपके शुभ जन्मसे चैत्र शुक्ला त्रयोदशीकी तिथि पवित्र हुई और उसे महान् उत्सवोंके लिये पर्वका सा गौरव प्राप्त हुआ। इस तिथिको जन्मसमय उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र था, जिसे कहीं कहीं 'हस्तोत्तरा' (हस्त नक्षत्र है उत्तरमें—अनन्तर—जिसके) इस नामसे भी उल्लेखित किया गया है, और सौम्य ग्रह अपने उच्चस्थान पर स्थित थे; जैसा कि श्रीपूज्यपादाचार्यके निम्न वाक्यसे प्रकट है :—

चैत्र-सितपक्ष-फाल्गुनि शशांकयोगे दिने त्रयोदश्याम् ।
जज्ञे स्वोच्चस्थेषु ग्रहेषु सौम्येषु शुभलग्ने ॥ ५ ॥

—निर्वाणभक्ति ।

---

* श्वेताम्बर सम्प्रदायके कुछ ग्रन्थोंमें 'क्षत्रियकुण्ड' ऐसा नामोल्लेख भी मिलता है जो संभवतः कुण्डपुरका एक महल्ला जान पड़ता है। अन्यथा, उसी सम्प्रदायके दूसरे ग्रन्थोंमें कुण्डग्रामादि-रूपसे कुण्डपुरका साफ़ उल्लेख पाया जाता है। यथा:—

"हत्थुत्तराहि जाओ कुंडग्गामे महावीरो ।" आ० नि० भा०

यह कुण्डपुर ही आजकल कुण्डलपुर कहा जाता है।

× कुछ श्वेताम्बरीय ग्रन्थोंमें 'बहन' लिखा है।

तेजःपुंज भगवान्के गर्भमें आते ही सिद्धार्थ राजा तथा अन्य कुटुम्बीजनोंकी श्रीवृद्धि हुई—उनका यश, तेज, पराक्रम और वैभव बढ़ा—माताकी प्रतिभा चमक उठी, वह सहज ही में अनेक गूढ प्रश्नोंका उत्तर देने लगी, और प्रजाजन भी उत्तरोत्तर सुख-शान्तिका अधिक अनुभव करने लगे। इससे जन्मकालमें आपका सार्थक नाम 'श्रीवर्द्धमान' या 'वर्द्धमान' रक्खा गया। साथ ही, वीर, महावीर, और सन्मति जैसे नामोंकी भी क्रमशः सृष्टि हुई, जो सब आपके उस समय प्रस्फुटित तथा उच्छलित होनेवाले गुणों पर ही एक आधार रखते हैं *।

महावीरके पिता 'णात' वंशके क्षत्रिय थे। 'णात' यह प्राकृत भाषाका शब्द है और 'नात' ऐसा दन्त्य नकारसे भी लिखा जाता है। संस्कृतमें इसका पर्यायरूप होता है 'ज्ञात'। इसीसे 'चारित्र-भक्ति' में श्रीपूज्यपादाचार्यने "श्रीमज्ज्ञातकुलेन्दुना" पदके द्वारा महावीर भगवान्को 'ज्ञात' वंशका चन्द्रमा लिखा है, और इसीसे महावीर 'णातपुत्त' अथवा 'ज्ञातपुत्र' भी कहलाते थे, जिसका बौद्धादि ग्रन्थोंमें भी उल्लेख पाया जाता है। इस प्रकार वंशके ऊपर नामोंका उस समय चलन था—बुद्धदेव भी अपने वंश परसे 'शाक्यपुत्र' कहे जाते थे। अस्तु; इस 'नात' का ही बिगड़ कर अथवा लेखकों या पाठकोंकी नासमझीकी वजहसे बादको 'नाथ' रूप हुआ जान पड़ता है। और इसीसे कुछ ग्रन्थोंमें महावीरको नाथवंशी लिखा हुआ मिलता है, जो ठीक नहीं है।

महावीरके बाल्यकालकी घटनाओंमेंसे दो घटनाएँ खास तौरसे उल्लेखयोग्य हैं—एक यह कि, संजय और विजय नामके दो चारण मुनियोंको तत्त्वार्थ-विषयक कोई भारी संदेह उत्पन्न हो गया था, जन्मके कुछ दिन बाद ही जब उन्होंने आपको देखा तो आपके

* देखो, गुणभद्राचार्यकृत महापुराणका ७४वाँ पर्व।

दर्शनमात्रसे उनका वह सब संदेह तत्काल दूर हो गया और इस लिये उन्होंने बड़ी भक्तिसे आपका नाम 'सन्मति' रक्खा *। दूसरी यह कि, एक दिन आप बहुतसे राजकुमारोंके साथ वनमें वृक्षक्रीड़ा कर रहे थे, इतनेमें वहाँ पर एक महाभयंकर और विशालकाय सर्प आ निकला और उस वृक्षको ही मूलसे लेकर स्कंध पर्यन्त बेढ़कर स्थित हो गया जिस पर आप चढ़े हुए थे। उसके विकराल रूपको देखकर दूसरे राजकुमार भयविह्वल हो गये और उसी दशामें वृक्षों परसे गिरकर अथवा कूदकर अपने अपने घरको भाग गये। परन्तु आपके हृदयमें ज़रा भी भयका संचार नहीं हुआ—आप बिलकुल निर्भयचित्त होकर उस काले नागसे ही क्रीड़ा करने लगे और आपने उस पर सवार होकर अपने बल तथा पराक्रमसे उसे खूब ही घुमाया, फिराया तथा निर्मद कर दिया। उसी वक्तसे आप लोकमें 'महावीर' नामसे प्रसिद्ध हुए। इन दोनों + घटनाओंसे यह स्पष्ट जाना जाता है कि महावीरमें बाल्य-कालसे ही बुद्धि और शक्तिका असाधारण विकास हो रहा था और इस प्रकारकी घटनाएँ उनके भावी असाधारण व्यक्तित्वको सूचित करती थीं। सो ठीक ही है—

"होनहार बिरवानके होत चीकने पात"।

* संजयस्यार्थसंदेहे संजाते विजयस्य च।
जन्मानन्तरमेवैनमभ्येत्यालोकमात्रतः॥
तत्संदेहगते ताभ्यां चारणाभ्यां स्वभक्तितः।
अस्त्वेष सन्मतिर्देवो भावीति समुदाहृतः॥

—महापुराण, पर्व ७४ वाँ।

+ इनमेंसे पहली घटनाका उल्लेख प्रायः दिगम्बर ग्रन्थोंमें और दूसरीका दिगम्बर तथा श्वेताम्बर दोनों ही सम्प्रदायके ग्रन्थोंमें बहुलतासे पाया जाता है।

प्रायः तीस वर्षकी अवस्था हो जाने पर महावीर संसार-देह-भोगोंसे पूर्णतया विरक्त होगये, उन्हें अपने आत्मोत्कर्षको साधने और अपना अन्तिम ध्येय प्राप्त करनेकी ही नहीं किन्तु संसारके जीवोंको सन्मार्गमें लगाने अथवा उनकी सच्ची सेवा बजानेकी एक विशेष लगन लगी—दीन दुखियोंकी पुकार उनके हृदयमें घर कर गई—और इसलिये उन्होंने, अब और अधिक समय तक गृहवास-को उचित न समझ कर, जंगलका रास्ता लिया, संपूर्ण राज्य-वैभवको ठुकरा दिया और इन्द्रिय-सुखोंसे मुख मोड़कर मंगसिर-वदि १० मीको 'ज्ञातखंड' नामक वनमें जिनदीक्षा धारण करली। दीक्षाके समय आपने संपूर्ण परिग्रहका त्याग करके आकिंचन्य (अपरिग्रह) व्रत ग्रहण किया, अपने शरीर परसे वस्त्राभूषणोंको उतार कर फेंक दिया * और केशोंको क्लेशसमान समझते हुए उनका भी लौंच कर डाला। अब आप देहसे भी निर्ममत्व होकर नग्न रहते थे, सिंहकी तरह निर्भय होकर जंगल-पहाड़ोंमें विचरते थे और दिन रात तपश्चरण ही तपश्चरण किया करते थे।

विशेष सिद्धि और विशेष लोकसेवाके लिये विशेष ही तपश्चरण की जरूरत होती है—तपश्चरण ही रोम रोममें रमे हुए आन्तरिक मलको छाँट कर आत्माको शुद्ध, साफ, समर्थ और कार्यक्षम बनाता है। इसी लिये महावीरको बारह वर्ष तक घोर तपश्चरण करना पड़ा—खूब कड़ा योग साधना पड़ा—तब कहीं जाकर आपकी शक्तियोंका पूर्ण विकास हुआ। इस दुर्द्धर तपश्चरणकी

* कुछ श्वेताम्बरीय ग्रन्थोंमें इतना विशेष कथन पाया जाता है और वह संभवतः साम्प्रदायिक जान पड़ता है कि, वस्त्राभूषणोंको उतार डालनेके बाद इन्द्रने 'देवदूष्य' नामका एक बहुमूल्य वस्त्र भगवान्के कन्धे पर डाल दिया था, जो १३ महीने तक पड़ा रहा। बादको महावीरने उसे भी त्याग दिया और वे पूर्ण रूपसे नग्नदिगम्बर अथवा जिनकल्पी ही रहे।

कुछ घटनाओंको मालूम करके रोंगटे खड़े हो जाते हैं। परन्तु साथ ही आपके असाधारण धैर्य, अटल निश्चय, सुदृढ़ आत्म-विश्वास, अनुपम साहस और लोकोत्तर क्षमाशीलताको देखकर हृदय भक्तिसे भर आता है और खुद-बखुद (स्वयमेव) स्तुति करनेमें प्रवृत्त हो जाता है। अस्तु; मनःपर्ययज्ञानकी प्राप्ति तो आपको दीक्षा लेनेके बाद ही होगई थी परन्तु केवलज्ञान-ज्योतिका उदय बारह वर्षके उग्र तपश्चरणके बाद वैशाख सुदि १० मीको तीसरे पहरके समय उस वक्त हुआ जब कि आप जृम्भका ग्रामके निकट ऋजुकूला नदीके किनारे, शाल वृक्षके नीचे एक शिला पर, षष्ठोपवाससे युक्त हुए, क्षपकश्रेणि पर आरूढ थे—आपने शुक्ल ध्यान लगा रक्खा था—और चन्द्रमा हस्तोत्तर नक्षत्रके मध्यमें स्थित था *। जैसा कि श्रीपूज्यपादाचार्यके निम्न वाक्योंसे प्रकट है :—

> ग्राम-पुर-खेट-कर्वट-मटम्ब-घोषाकरान प्रविजहार।
> उग्रैस्तपोविधानै द्वादशवर्षाण्यमरपूज्यः॥ १० ॥
> ऋजकूलायास्तीरे शालद्रुमसंश्रिते शिलापट्टे।
> अपराह्णे षष्ठेनास्थितस्य खलु जृम्भकाग्रामे ॥११॥

केवलज्ञानोत्पत्तिके समय और क्षेत्रादिका प्राय यह सब वर्णन 'धवल' और 'जयधवल' नामके दोनो सिद्धान्तग्रन्थोंमें उद्धृत तीन प्राचीन गाथाओंमे भी पाया जाता है, जो इस प्रकार है —

> गमइय छदुमत्थत्तं बारसवासाणि पंचमासे य।
> पण्णारसाणि दिणाणि य तिरयणसुद्धो महावीरो ॥१॥
> उजुकूलणदीतीरे जंभियगामे वहि सिलावट्टे।
> छट्ठेणादावेंतो अवरण्हे पायछायाए ॥ २ ॥
> वइसाहजोण्हपक्खे दसमीए खवगसेढिमारूढो।
> हंतूण घाइकम्मं केवलणाणं समावण्णो ॥ ३ ॥

वैशाखसितदशम्यां हस्तोत्तरमध्यमाश्रिते चंद्रे ।
क्षपकश्रेण्यारूढस्योत्पन्नं केवलज्ञानम् ॥ १२॥
—निर्वाणभक्ति ।

इस तरह घोर तपश्चरण तथा ध्यानाग्नि-द्वारा, ज्ञानावरणीय दर्शनावरणीय मोहनीय और अन्तराय नामके घातिकर्म-मलको दग्ध करके, महावीर भगवानने जब अपने आत्मामें ज्ञान, दर्शन, सुख, और वीर्य नामके स्वाभाविक गुणोंका पूरा विकास अथवा उनका पूर्ण रूपसे आविर्भाव कर लिया और आप अनुपम शुद्धि, शक्ति तथा शान्तिकी पराकाष्ठाको पहुँच गये, अथवा यों कहिये कि आपको स्वात्मोपलब्धि रूपी 'सिद्धि' की प्राप्ति हो गई, तब आपने सब प्रकारसे समर्थ हो कर ब्रह्मपथका नेतृत्व ग्रहण किया और संसारी जीवोंको सन्मार्गका उपदेश देनेके लिये—उन्हें उन की भूल सुझाने, बन्धनमुक्त करने, ऊपर उठाने और उनके दुःख मिटानेके लिये—अपना विहार प्रारम्भ किया। अथवा यों कहिये कि लोकहित-साधनका जो असाधारण विचार आपका वर्षोंसे चल रहा था और जिसका गहरा संस्कार जन्मजन्मातरोंसे आपके आत्मामें पड़ा हुआ था वह अब संपूर्ण रुकावटोंके दूर हो जाने पर स्वतः कार्यमें परिणत हो गया।

विहार करते हुए आप जिस स्थान पर पहुँचते थे और वहाँ आपके उपदेशके लिये जो महती सभा जुड़ती थी और जिसे जैन-साहित्यमें 'समवसरण' नामसे उल्लेखित किया गया है उसकी एक खास विशेषता यह होती थी कि उसका द्वार सबके लिये मुक्त रहता था, कोई किसीके प्रवेशमें बाधक नहीं होता था—पशुपक्षी तक भी आकृष्ट होकर वहाँ पहुँच जाते थे, जाति-पांति छूताछूत और ऊँचनीचका उसमें कोई भेद नहीं था, सब मनुष्य एक ही मनुष्यजातिमें परिगणित होते थे, और उक्त प्रकारके भेदभावको

भूलाकर आपसमें प्रेमके साथ रल-मिलकर बैठते और धर्मश्रवण करते थे--मानों सब एक ही पिताकी संतान हों। इस आदर्शसे समवसरणमें भगवान् महावीरकी समता और उदारता मूर्तिमती नज़र आती थी और वे लोग तो उसमें प्रवेश पाकर बेहद संतुष्ट होते थे जो समाजके अत्याचारोंसे पीड़ित थे, जिन्हें कभी धर्मश्रवणका, शास्त्रोंके अध्ययनका, अपने विकासका और उच्चसंस्कृतिको प्राप्त करनेका अवसर ही नहीं मिलता था अथवा जो उसके अधिकारी ही नहीं समझे जाते थे। इसके सिवाय, समवसरणकी भूमिमें प्रवेश करते ही भगवान् महावीरके सामीप्यसे जीवोंका वैरभाव दूर हो जाता था, क्रूर जन्तु भी सौम्य बन जाते थे और उनका जाति-विरोध तक मिट जाता था। इसीसे सर्पको नकुल या मयूरके पास बैठनेमें कोई भय नहीं होता था, चूहा बिना किसी संकोचके बिल्लीका आलिंगन करता था, गौ और सिंही मिलकर एक ही नाँदमें जल पीती थीं और मृग-शावक खुशीसे सिंह-शावकके साथ खेलता था। यह सब महावीरके योग-बलका माहात्म्य था। उनके आत्मामें अहिंसाकी पूर्ण प्रतिष्ठा हो चुकी थी, इसलिये उनके संनिकट अथवा उनकी उपस्थितिमें किसीका वैर स्थिर नहीं रह सकता था। पतंजलि ऋषिने भी, अपने योगदर्शनमें, योगके इस माहात्म्यको स्वीकार किया है; जैसा कि उसके निम्न सूत्रसे प्रकट है:—

अहिंसाप्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैरत्यागः ॥३५॥

जैनशास्त्रोंमें महावीरके विहार-समयादिककी कितनी ही विभूतियोंका—अतिशयोंका—वर्णन किया गया है परन्तु उन्हें यहाँ पर छोड़ा जाता है। क्योंकि स्वामी समन्तभद्रने लिखा है:—

देवागम-नभोयान-चामरादि-विभूतयः ।

मायाविष्वपि दृश्यन्ते नातस्त्वमसि नो महान् ॥१॥
—आप्तमीमांसा।

अर्थात्—देवोंका आगमन, आकाशमें गमन और चामरादिक (दिव्य चमर, छत्र, सिंहासन, भामंडलादिक) विभूतियोंका अस्तित्व तो मायावियोंमें—इन्द्रजालियोंमें—भी पाया जाता है, इनके कारण हम आपको महान् नहीं मानते और न इनकी वजहसे आपकी कोई खास महत्ता या बड़ाई ही है।

भगवान् महावीरकी महत्ता और बड़ाई तो उनके मोहनीय, ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय नामक कर्मोंका नाश करके परम शान्तिको लिये हुए * शुद्धि तथा शक्तिकी पराकाष्ठाको पहुँचने और ब्रह्मपथका—अहिंसात्मक मोक्षमार्गका—नेतृत्व ग्रहण करनेमें है—अथवा यों कहिये कि आत्मोद्धारके साथसाथ लोककी सच्ची सेवा बजानेमें है। जैसा कि स्वामी समन्तभद्रके निम्न वाक्य से भी प्रकट है :—

त्वं शुद्धिशक्त्योरुदयस्य काष्ठां
तुलाव्यतीतां जिन शांतिरूपाम्।
अवापिथ ब्रह्मपथस्य नेता
महानितीयत् प्रतिवक्तुमीशाः ॥ ४ ॥
युक्त्यनुशासन।

महावीर भगवान्ने प्रायः तीस वर्ष तक लगातार अनेक देश-देशान्तरोंमें विहार करके सन्मार्गका उपदेश दिया, असंख्य प्राणियोंके अज्ञानान्धकारको दूर करके उन्हें यथार्थ वस्तु-स्थितिका बोध कराया, तत्त्वार्थको समझाया, भूलें दूर कीं, भ्रम मिटाए,

* ज्ञानावरण-दर्शनावरणके अभावसे निर्मल ज्ञान-दर्शनकी आविर्भूतिका नाम 'शुद्धि' और अन्तराय कर्मके नाशसे वीर्यलब्धिका होना 'शक्ति' है।

कमजोरियाँ हटाई, भय भगाया, आत्मविश्वास बढ़ाया, कदाग्रह दूर किया, पाखण्डबल घटाया, मिथ्यात्व छुड़ाया, पतितोंको उठाया, अन्याय-अत्याचारको रोका, हिंसाका विरोध किया, साम्यवादको फैलाया और लोगोंको स्वावलम्बन तथा संयमकी शिक्षा दे कर उन्हें आत्मोत्कर्षके मार्ग पर लगाया। इस तरह पर आपने लोकका अनन्त उपकार किया है और आपका यह विहार बड़ा ही उदार, प्रतापी एवं यशस्वी हुआ है। इसीसे स्वामी समन्तभद्रने स्वयंभू-स्तोत्रमें **'गिरिभित्यवदानवतः'** इत्यादि पद्यके द्वारा इस विहारका यत्किंचित् उल्लेख करते हुए, उसे **"ऊर्जितं गतं"** लिखा है।

भगवान्का यह विहार-काल ही उनका तीर्थ-प्रवर्तनकाल है, और इस तीर्थ-प्रवर्तनकी वजहसे ही वे 'तीर्थंकर' कहलाते हैं *। आपके विहारका पहला स्टेशन राजगृहीके निकट विपुलाचल तथा वैभार पर्वतादि पंच पहाड़ियोंका प्रदेश जान पड़ता है † जिसे

* 'जयधवल' में, महावीरके इस तीर्थप्रवर्तन और उनके आगमकी प्रमाणताका उल्लेख करते हुए, एक प्राचीन गाथाके आधार पर उन्हें निःसंशयकर (जगतके जीवोंके संदेहको दूर करने वाले), वीर (ज्ञान-वचनादिकी सातिशय शक्तिसे सम्पन्न), जिनोत्तम (जितेन्द्रियों तथा कर्म-जेताओंमें श्रेष्ठ), राग-द्वेष-भयसे रहित और धर्मतीर्थ-प्रवर्तक लिखा है। यथा :—

> णिस्संसयकरो वीरो महावीरो जिणुत्तमो।
> राग-दोस-भयादीदो धम्मतित्थस्स कारओ॥

† आप जृम्भका ग्रामके ऋजुकूला-तटसे चलकर पहले इसी प्रदेशमें आए हैं। इसीसे श्रीपूज्यपादाचार्यने आपकी केवलज्ञानोत्पत्तिके उस कथनके अनन्तर जो ऊपर दिया गया है आपके वैभार पर्वत पर आनेकी बात कही है और तभीसे आपके तीस वर्षके विहारकी गणना की है। यथा :—

धवल और जयधवल नामके सिद्धान्त ग्रंथोंमें क्षेत्ररूपसे महावीर-का अर्थकर्तृत्व प्ररूपण करते हुए, 'पंचशैलपुर' नामसे उल्लेखित किया है *। यहीं पर आपका प्रथम उपदेश हुआ है—केवलज्ञानोत्पत्तिके पश्चात् आपकी दिव्य वाणी खिरी है—और उस उपदेशके समयसे ही आपके तीर्थकी उत्पत्ति हुई है ‡। राजगृहीमें उस वक्त राजा श्रेणिक राज्य करता था, जिसे बिम्बसार भी कहते हैं। उसने भगवानको परिषदोंमें—समवसरण सभाओंमें—प्रधान भाग लिया है और उसके प्रश्नों पर बहुतसे रहस्योंका उद्घाटन हुआ है। श्रेणिककी रानी चेलना भी राजा चेटककी पुत्री थी और इस लिये वह रिश्तेमें महावीरकी मातृस्वसा (मावसी)† होती थी। इस तरह महावीरका अनेक राज्योंके साथ

---

*"अथ भगवान्सम्प्रापद्दिव्यं वैभारं पर्वतं रम्यं।
चातुर्वर्ण्य-सुसंघस्तत्राभूद् गौतमप्रभृति ॥ १३ ॥
"दशविधमनगाराणामेकादशधोत्तरं तथा धर्मं।
देशयमानो व्यहरत् त्रिंशद्वर्षाण्यथ जिनेन्द्रः ॥१४॥
—निर्वाणभक्ति।

" पंचसेलपुरे रम्मे विउले पव्वदुत्तमे।
णाणादुमसमाइण्णे देवदाणववंदिदे ॥
महावीरेण (अ)त्थो कहिओ भवियलोअस्स।

‡ यह तीर्थोत्पत्ति श्रावण-कृष्ण-प्रतिपदाको पूर्वाण्ह (सूर्योदय) के समय अभिजित नक्षत्रमें हुई है; जैसा कि धवल सिद्धान्तके निम्न वाक्यसे प्रकट है—

वासस्स पढममासे पढमे पक्खम्मि सावणे बहुले।
पाडिवदपुव्वदिवसे तित्थुप्पत्ती दु अभिजिम्हि ॥२॥

† कुछ श्वेताम्बरीय ग्रन्थानुसार 'मातुलजा'—मामूज़ाद बहन।

में शारीरिक सम्बन्ध भी था। उनमें आपके धर्मका बहुत प्रचार हुआ और उसे अच्छा राजाश्रय मिला है।

विहारके समय महावीरके साथ कितने ही मुनि-आर्यिकाओं तथा श्रावक-श्राविकाओंका संघ रहता था। आपने चतुर्विध संघ की अच्छी योजना और बड़ी ही सुन्दर व्यवस्था की थी। इस संघके गणधरोंकी संख्या ग्यारह तक पहुँच गई थी और उनमें सबसे प्रधान गौतम स्वामी थे, जो 'इन्द्रभूति' नामसे भी प्रसिद्ध हैं और समवसरणमें मुख्य गणधरका कार्य करते थे। ये गौतम-गोत्री और सकल वेद-वेदांगके पारगामी एक बहुत बड़े ब्राह्मण विद्वान् थे, जो महावीरको केवलज्ञानकी संप्राप्ति होनेके पश्चात् उनके पास अपने जीवाऽजीव-विषयक संदेहके निवारणार्थ गये थे, संदेहकी निवृत्ति पर उनके शिष्य बन गये थे और जिन्होंने अपने बहुतसे शिष्योंके साथ भगवानसे जिनदीक्षा लेली थी। अस्तु।

तीस * वर्षके लम्बे विहारको समाप्त करते और कृतकृत्य होते हुए, भगवान महावीर जब पावापुरके एक सुन्दर उद्यानमें पहुँचे, जो अनेक पद्मसरोवरों तथा नाना प्रकारके वृक्षसमूहोंसे मंडित था, तब आप वहाँ कायोत्सर्गसे स्थित हो गये और आपने परम शुक्लध्यानके द्वारा योगनिरोध करके दग्धरज्जु-समान अवशिष्ट रहे कर्म रजको—अघातिचतुष्टयको—भी अपने आत्मासे पृथक्

* धवल सिद्धान्तमें—और जयधवलमें भी—कुछ आचार्योंके मतानुसार एक प्राचीन गाथाके आधार पर विहारकालकी संख्या २९ वर्ष ५ महीने २० दिन भी दी है, जो केवलोत्पत्ति और निर्वाणकी तिथियोंको देखते हुए ठीक जान पड़ती है। और इस लिये ३० वर्ष की यह संख्या स्थूलरूपसे समझनी चाहिये। वह गाथा इस प्रकार है:—

वासाणूणत्तीसं पंच य मासे य वीसदिवसे य।
चउविहअणगारेहि बारहहि गणेहि विहरंतो ॥ १ ॥

कर डाला, और इस तरह कार्तिक वदि अमावस्याके दिन *,

* धवल सिद्धान्तमें, "पच्छा पावाणयरे कत्तियमासे य किण्हचोद्दसिए। सादीए रत्तीए सेसरय छेत्तु णिव्वाओ ॥" इस प्राचीन गाथाको प्रमाणमें उद्धृत करते हुए, कार्तिक वदि चतुर्दशीकी रात्रिको (पच्छिमभाए=पिछले पहरमें) निर्वाणका होना लिखा है। साथ ही, केवलोत्पत्तिसे निर्वाण तकके समय २९ वर्ष ५ महीने २० दिनकी संगति ठीक बिठलाते हुए, यह भी प्रतिपादन किया है कि अमावस्याके दिन देवेंद्रोंके द्वारा परिनिर्वाणपूजा की गई है वह दिन भी इस कालमें शामिल करने पर कार्तिकके १५ दिन होते हैं। यथा :—

"अमावसीए परिणिव्वाणपूजा सयलदेविंदेहि कया त्ति तंपि दिवस-मेत्थेव पक्खित्ते पण्णारस दिवसा होंति।"

इससे यह मालूम होता है कि निर्वाण अमावस्याको दिनके समय तथा दिनके बाद रात्रिको नहीं हुआ, बल्कि चतुर्दशीकी रात्रिके अन्तिम भागमें हुआ है जब कि अमावस्या आ गई थी और उसका सारा कृत्य—निर्वाणपूजा और देहसंस्कारादि—अमावस्याको ही प्रातःकाल आदिके समय भुगता है। इसीसे कार्तिककी अमावस्या आम तौर पर निर्वाणकी तिथि कहलाती है। और चूंकि वह रात्रि चतुर्दशीकी थी इससे चतुर्दशीको निर्वाण कहना भी कुछ असंगत मालूम नहीं होता। महापुराणमें गुणभद्राचार्यने भी "कार्तिक-कृष्णपक्षस्य चतुर्दश्या निशात्यये" इस वाक्यके द्वारा कृष्ण चतुर्दशीकी रात्रिको उस समय निर्वाणका होना बतलाया है जब कि रात्रि समाप्तिके करीब थी। उसी रात्रिके अंधेरेमें, जिसे जिनसेनने हरिवंशपुराणमें "कृष्णभूतसुप्रभात-संध्यासमये" पदके द्वारा उल्लेखित किया है, देवेन्द्रों द्वारा दीपावली प्रज्वलित करके निर्वाणपूजा किये जानेका उल्लेख है और वह पूजा धवलके उक्त वाक्यानुसार अमावस्याको की गई है। इससे चतुर्दशीकी रात्रिके अन्तिम भागमें अमावस्या आ गई थी यह स्पष्ट जाना जाता है। और इस लिये अमावस्या को निर्वाण बतलाना बहुत युक्ति युक्त है, उसीका श्रीपूज्यपादाचार्यने "कार्तिककृष्णस्यान्ते" पदके द्वारा उल्लेख किया है।

स्वाति नक्षत्रके समय, निर्वाण-पदको प्राप्त करके आप सदाके लिये अजर, अमर तथा अक्षय सौख्यको प्राप्त हो गये *। इसीका नाम विदेहमुक्ति, आत्यन्तिक स्वात्मस्थिति, परिपूर्ण सिद्धावस्था अथवा निष्कल-परमात्मपदकी प्राप्ति है। भगवान महावीर प्रायः ७२ वर्षकी अवस्था×में अपने इस अन्तिम ध्येयको प्राप्त करके लोकाग्रवासी हुए। और आज उन्हींका तीर्थ प्रवर्त रहा है।

इस प्रकार भगवान् महावीरका यह संक्षेपमें सामान्य परिचय है, जिसमें प्रायः किसीको भी कोई खास विवाद नहीं है। भगवज्जीवनीकी उभय सम्प्रदाय-सम्बन्धी कुछ विवादग्रस्त अथवा मत-

* जैसा कि श्रीपूज्यपादके निम्न वाक्यसे भी प्रकट है:—

"पद्मवनदीर्घिकाकुलविविधद्रुमखण्डमण्डिते रम्ये।
पावानगरोद्याने व्युत्सर्गेण स्थितः स मुनिः॥ १६॥
कार्तिककृष्णस्यान्ते स्वातावृक्षे निहत्य कर्मरजः।
अवशेषं संप्रापद् व्यजरामरमक्षयं सौख्यम्॥ १७॥"
— निर्वाणभक्ति।

× धवल और जयधवल नामके सिद्धान्त ग्रन्थोंमें महावीरकी आयु, कुछ आचार्योंके मतानुसार, ७१ वर्ष ३ महीने २५ दिनकी भी बतलाई है और उसका लेखा इस प्रकार दिया है :—

गर्भकाल = ९ मास ८ दिन; कुमारकाल = २८ वर्ष ७ मास १२ दिन; छद्मस्थ-(तपश्चरण-) काल = १२ वर्ष ५ मास १५ दिन; केवल-(विहार-) काल = २९ वर्ष ५ मास २० दिन।

इस लेखेमें कुमारकालमें एक वर्षकी कमी जान पड़ती है; क्योंकि वह आम तौर पर प्रायः ३० वर्षका माना जाता है। दूसरे, इस आयुमेंसे यदि गर्भकालको निकाल दिया जाय, जिसका लोक व्यवहारमें ग्रहण नहीं होता तो वह ७० वर्ष कुछ महीनेकी ही रह जाती है और इतनी आयुके लिये ७२ वर्षका व्यवहार नहीं बनता।

भेदवाली बातोंको मैंने पहलेसे ही छोड़ दिया है । उनके लिये इस छोटेसे निबन्धमें स्थान भी कहाँ हो सकता है ? वे तो गहरे अनुसंधानको लिये हुए एक विस्तृत आलोचनात्मक निबन्धमें अच्छे ऊहापोह अथवा विवेचनके साथ ही दिखलाई जानेके योग्य हैं।

देशकालकी परिस्थिति

देश-कालकी जिस परिस्थितिने महावीर भगवान्को उत्पन्न किया उसके सम्बन्धमें भी दो शब्द कह देना यहाँ पर उचित जान पड़ता है। महावीर भगवानके अवतारसे पहले देशका वातावरण बहुत ही क्षुब्ध, पीड़ित तथा संत्रस्त हो रहा था; दीन-दुर्बल खूब सताए जाते थे; ऊँच-नीचकी भावनाएँ जोरों पर थीं; शूद्रोंसे पशुओं-जैसा व्यवहार होता था, उन्हें कोई सम्मान या अधिकार प्राप्त नहीं था, वे शिक्षा दीक्षा और उच्च संस्कृतिके अधिकारी ही नहीं माने जाते थे और उनके विषयमें बहुत ही निर्दय तथा घातक नियम प्रचलित थे; स्त्रियाँ भी काफी तौर पर सताई जाती थीं, उच्च शिक्षासे वंचित रक्खी जाती थीं, उनके विषयमें "न स्त्री स्वातंत्र्य-मर्हति" (स्त्री स्वतंत्रताकी अधिकारिणी नहीं) जैसी कठोर आज्ञाएँ जारी थीं और उन्हें यथेष्ट मानवी अधिकार प्राप्त नहीं थे—बहुतों-की दृष्टिमें तो वे केवल भोगकी वस्तु, विलासकी चीज़, पुरुषकी सम्पत्ति अथवा बच्चा जननेकी मशीनमात्र रह गई थीं; ब्राह्मणोंने धर्मानुष्ठान आदिके सब ऊँचे ऊँचे अधिकार अपने लिए रिजर्व रख छोड़े थे—दूसरे लोगोंको वे उनका पात्र ही नहीं समझते थे—सर्वत्र उन्हींकी तूती बोलती थी, शासन विभागमें भी उन्होंने अपने लिए खास रिआयतें प्राप्त कर रक्खी थीं—घोरसे घोर पाप और बड़ेसे बड़ा अपराध कर लेने पर भी उन्हें प्राणदण्ड नहीं दिया जाता था, जब कि दूसरोंको एक साधारणसे अपराध पर भी

फाँसी पर चढ़ा दिया जाता था; ब्राह्मणोंके बिगड़े हुए जाति-भेद-की दुर्गंधसे देशका प्राण घुट रहा था और उसका विकास रुक रहा था, खुद उनके अभिमान तथा जाति-मदने उन्हें पतित कर दिया था और उनमें लोभ-लालच, दंभ, अज्ञानता, अकर्मण्यता, क्रूरता तथा धूर्ततादि दुर्गुणोंका निवास हो गया था; वे रिश्वतें अथवा दक्षिणाएँ लेकर परलोकके लिए सर्टिफिकेट और पर्वाने तक देने लगे थे; धर्मकी असली भावनाएँ प्रायः लुप्त हो गई थीं और उनका स्थान अर्थ-हीन क्रियाकाण्डों तथा थोथे विधिविधानों-ने ले लिया था; बहुतसे देवी-देवताओंकी कल्पना प्रबल हो उठी थी, उनके संतुष्ट करनेमें ही सारा समय चला जाता था और उन्हें पशुओंकी बलियाँ तक चढ़ाई जाती थीं; धर्मके नाम पर सर्वत्र यज्ञ-यागादिक कर्म होते थे और उनमें असंख्य पशुओंको होमा जाता था—जीवित प्राणी धधकती हुई आगमें डाल दिये जाते थे —और उनका स्वर्ग जाना बतलाकर अथवा '**वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति**' कहकर लोगोंको भुलावेमें डाला जाता था और उन्हें ऐसे क्रूर कर्मोंके लिये उत्तेजित किया जाता था। साथ ही, बलि तथा यज्ञके बहाने लोग मांस खाते थे। इस तरह देशमें चहुँ ओर अन्याय-अत्याचारका साम्राज्य था—बड़ा ही बीभत्स तथा करुण दृश्य उपस्थित था—सत्य कुचला जाता था, धर्म अपमानित हो रहा था, पीड़ितोंकी आहोंके धुएँसे आकाश व्याप्त था और सर्वत्र असन्तोष ही असन्तोष फैला हुआ था।

यह सब देखकर सज्जनोंका हृदय तलमला उठा था, धार्मिकों को रातदिन चैन नहीं पड़ता था और पीड़ित व्यक्ति अत्याचारोंसे ऊब कर त्राहि त्राहि कर रहे थे। सबोंकी हृदय-तंत्रियोंसे 'हो कोई अवतार नया'की एक ही ध्वनि निकल रही थी और सबोंकी दृष्टि एक ऐसे असाधारण महात्माकी ओर लगी हुई थी जो उन्हें

हस्तावलम्बन देकर इस घोर विपत्तिसे निकाले। ठीक इसी समय—आजसे कोई ढाई हज़ार वर्षसे भी पहले—प्राची दिशामें भगवान् महावीर भास्करका उदय हुआ, दिशाएँ प्रसन्न हो उठीं, स्वास्थ्यकर मंद सुगंध पवन बहने लगा, सज्जन धर्मात्माओं तथा पीडितोंके मुखमंडल पर आशाकी रेखा दीख पड़ी, उनके हृदयकमल खिल गये और उनकी नसनाड़ियोंमें ऋतुराज (वसंत)के आगमनकाल-जैसा नवरसका संचार होने लगा।

महावीरका उद्धारकार्य

महावीर ने लोक-स्थितिका अनुभव किया, लोगोंकी अज्ञानता, स्वार्थपरता, उनके वहम, उनका अन्धविश्वास, और उनके कुत्सित विचार एवं दुर्व्यवहारको देखकर उन्हें भारी दुःख तथा खेद हुआ। साथ ही, पीड़ितोंकी करुण पुकारको सुन कर उनके हृदयसे दया-का अखंड स्रोत बह निकला। उन्होंने लोकोद्धारका संकल्प किया, लोकोद्धारका संपूर्ण भार उठानेके लिये अपनी सामर्थ्यको तोला और उसमें जो त्रुटि थी उसे बारह वर्षके उस घोर तपश्चरणके द्वारा पूरा किया जिसका अभी उल्लेख किया जा चुका है।

इसके बाद सब प्रकारसे शक्तिसम्पन्न होकर महावीरने लोकोद्धारका सिंहनाद किया—लोकमें प्रचलित सभी अन्याय-अत्याचारों, कुविचारों तथा दुराचारोंके विरुद्ध आवाज़ उठाई—और अपना प्रभाव सबसे पहले ब्राह्मण विद्वानों पर डाला, जो उस वक्त देशके 'सर्वे सर्वाः' बने हुए थे और जिनके सुधरने पर देशका सुधरना बहुत कुछ सुखसाध्य हो सकता था। आपके इस पटु सिंहनादको सुनकर, जो एकान्तका निरसन करने वाले स्याद्वादकी विचार-पद्धतिको लिये हुए था, लोगोंका तत्त्वज्ञान-विषयक भ्रम दूर हुआ, उन्हें अपनी भूलें मालूम पड़ीं, धर्म-अधर्म-

के यथार्थ स्वरूपका परिचय मिला, आत्मा-अनात्माका भेद स्पष्ट हुआ और बन्ध-मोक्षका सारा रहस्य जान पड़ा; साथ ही, झूठे देवी-देवताओं तथा हिंसक यज्ञादिकों परसे उनकी श्रद्धा हटी और उन्हें यह बात साफ़ जँच गई कि हमारा उत्थान और पतन हमारे ही हाथमें है, उसके लिये किसी गुप्त शक्तिकी कल्पना करके उसीके भरोसे बैठ रहना अथवा उसको दोष देना अनुचित और मिथ्या है। इसके सिवाय, जातिभेदकी कट्टरता मिटी, उदारता प्रकटी, लोगोंके हृदयमें साम्यवादकी भावनाएँ दृढ हुईं और उन्हें अपने आत्मोत्कर्षका मार्ग सूझ पड़ा। साथ ही, ब्राह्मण गुरुओंका आसन डोल गया, उनमेंसे इन्द्रभूति-गौतम जैसे कितने ही दिग्गज विद्वानोंने भगवानके प्रभावसे प्रभावित हो कर उनकी समीचीन धर्मदेशनाको स्वीकार किया और वे सब प्रकारसे उनके पूरे अनुयायी बन गये। भगवानने उन्हें 'गणधर'के पद पर नियुक्त किया और अपने संघका भार सौंपा। उनके साथ उनका बहुत बड़ा शिष्यसमुदाय तथा दूसरे ब्राह्मण और अन्य धर्मानुयायी भी जैनधर्ममें दीक्षित होगये। इस भारी विजयसे क्षत्रिय गुरुओं और जैनधर्मकी प्रभाव-वृद्धिके साथ साथ तत्कालीन (क्रियाकाण्डी) ब्राह्मणधर्मकी प्रभा क्षीण हुई, ब्राह्मणोंकी शक्ति घटी, उनके अत्याचारोंमें रोक हुई, यज्ञ-यागादिक कर्म मंद पड़ गये—उनमें पशुओंके प्रतिनिधियोंकी भी कल्पना होने लगी—और ब्राह्मणोंके लौकिक स्वार्थ तथा जाति-पांतिके भेदको बहुत बड़ा धक्का पहुँचा। परन्तु निरंकुशताके कारण उनका पतन जिस तर्जसे हो रहा था वह रुक गया और उन्हें सोचने-विचारनेका अथवा अपने धर्म तथा परिणतिमें फेरफार करनेका अवसर मिला।

महावीरकी इस धर्मदेशना और विजयके सम्बन्धमें कविसम्राट डा० रवीन्द्रनाथ टागौरने जो दो शब्द कहे हैं वे इसप्रकार हैं:-

Mahavira proclaimed in India the message of Salvation that religion is a reality and not a mere social convention, that salvation comes from taking refuge in that true religion, and not from observing the external ceremonies of the community, that religion can not regard any, barrier between man and man as an eternal verity. Wondrous to relate, this teaching rapidly over-topped the barriers of the races' abiding instinct and conquered the whole country. For a long period now the influence of Kshatriya teachers completely suppressed the Brahmin power.

अर्थात्—महावीरने डंकेकी चोट भारतमें मुक्तिका ऐसा संदेश घोषित किया कि—धर्म यह कोई महज सामाजिक रूढि नहीं बल्कि वास्तविक सत्य है—वस्तु स्वभाव है,—और मुक्ति उस धर्ममें आश्रय लेनेसे ही मिल सकती है, न कि समाजके बाह्य आचारों-का—विधिविधानों अथवा क्रियाकांडोंका—पालन करनेसे, और यह कि धर्मकी दृष्टिमें मनुष्य मनुष्यके बीच कोई भेद स्थायी नहीं रह सकता। कहते आश्चर्य होता है कि इस शिक्षणने बद्धमूल हुई जातिकी हद बन्दियोंको शीघ्र ही तोड़ डाला और संपूर्ण देश पर विजय प्राप्त किया। इस वक्त क्षत्रिय गुरुओंके प्रभावने बहुत समय-के लिये ब्राह्मणोंकी सत्ताको पूरी तौरसे दबा दिया था।

इसी तरह लोकमान्य तिलक आदि देशके दूसरे भी कितनेही प्रसिद्ध हिन्दू विद्वानोंने, अहिंसादिकके विषयमें, महावीर भगवान् अथवा उनके धर्मकी ब्राह्मण धर्म पर गहरी छापका होना स्वीकार किया है, जिनके वाक्योंको यहाँ पर उद्धृत करनेकी जरूरत नहीं

है—अनेक पत्रों तथा पुस्तकोंमें वे छप चुके हैं। महात्मा गाँधी तो मुक्तकण्ठसे भ०महावीरके प्रशंसक बने हुए हैं। विदेशी विद्वानोंके भी बहुतसे वाक्य महावीरकी योग्यता, उनके प्रभाव और उनके शासनकी महिमा-सम्बंधमें उद्धृत किये जा सकते हैं परन्तु उन्हें भी छोड़ा जाता है।

वीर-शासनकी विशेषता

भगवान महावीरने संसारमें सुख-शान्ति स्थिर रखने और जनता-का विकास सिद्ध करनेके लिये चार महासिद्धान्तोंकी—१ अहिंसावाद, २ साम्यवाद, ३ अनेकान्तवाद (स्याद्वाद) और ४ कर्मवाद नामक महासत्योंकी—घोषणा की है और इनके द्वारा जनताको निम्न बातोंकी शिक्षा दी है :—

१ निर्भय-निर्वैर रह कर शांतिके साथ जीना तथा दूसरोंको जीने देना।

२ राग-द्वेष-अहंकार तथा अन्याय पर विजय प्राप्त करना और अनुचित भेद-भावको त्यागना।

३ सर्वतोमुखी विशाल दृष्टि प्राप्त करके अथवा नय-प्रमाणका सहारा लेकर सत्यका निर्णय तथा विरोधका परिहार करना।

४ 'अपना उत्थान और पतन अपने हाथमें है' ऐसा समझते हुए, स्वावलम्बी बनकर अपना हित और उत्कर्ष साधना तथा दूसरोंके हित-साधनमें मदद करना।

साथ ही, सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्रको—तीनोंके समुच्चयको—मोक्षकी प्राप्तिका एक उपाय अथवा मार्ग बतलाया है। ये सब सिद्धांत इतने गहन, विशाल तथा महान् हैं और इनकी विस्तृत व्याख्याओं तथा गम्भीर विवेचनाओंसे इतने जैन ग्रन्थ भरे हुए हैं कि इनके स्वरूपादि-विषयमें यहाँ कोई

चलती सी बात कहना इनके गौरवको घटाने अथवा इनके प्रति कुछ अन्याय करने जैसा होगा। और इसलिये इस छोटेसे निबन्ध में इनके स्वरूपादिका न लिखा जाना क्षमा किये जानेके योग्य है। इन पर तो अलग ही विस्तृत निबन्धोंके लिखे जानेकी ज़रूरत है। हाँ, स्वामी समन्तभद्रके निम्न वाक्यानुसार इतना ज़रूर बतलाना होगा कि महावीर भगवान्‌का शासन नय-प्रमाणके द्वारा वस्तुतत्त्व-को बिलकुल स्पष्ट करनेवाला और संपूर्ण प्रवादियोंके द्वारा अबाध्य होनेके साथ साथ दया (अहिंसा), दम (संयम), त्याग और समाधि (प्रशस्त ध्यान) इन चारोंकी तत्परताको लिये हुए है, और यही सब उसकी विशेषता है अथवा इसीलिये वह अद्वितीय है:—

दया-दम-त्याग-समाधिनिष्ठं, नय-प्रमाण-प्रकृतांजसार्थम् ।
अधृष्यमन्यैरखिलैः प्रवादैर्जिन त्वदीयं मतमद्वितीयम् ॥६॥

—युक्त्यनुशासन।

इस वाक्यमें 'दया'को सबसे पहला स्थान दिया गया है और वह ठीक ही है। जब तक दया अथवा अहिंसाकी भावना नहीं तब तक संयममें प्रवृत्ति नहीं होती, जब तक संयममें प्रवृत्ति नहीं तब तक त्याग नहीं बनता और जब तक त्याग नहीं तब तक समाधि नहीं बनती। पूर्व पूर्व धर्म उत्तरोत्तर धर्मका निमित्तकारण है। इसलिये धर्ममें दयाको पहला स्थान प्राप्त है। और इसीसे '**धर्मस्य मूलं दया**' आदि वाक्योंके द्वारा दयाको धर्मका मूल कहा गया है। अहिंसाको 'परम धर्म' कहनेकी भी यही वजह है। और उसे परम धर्म ही नहीं किन्तु 'परम ब्रह्म' भी कहा गया है; जैसा कि स्वामी समन्तभद्रके निम्न वाक्यमे प्रकट है:—

"अहिंसा भूतानां जगति विदितं ब्रह्म परमं ।"

—स्वयंभूस्तोत्र।

और इस लिये जो परम ब्रह्मकी आराधना करना चाहता है उसे अहिंसाकी उपासना करनी चाहिये—राग-द्वेषकी निवृत्ति, दया, परोपकार अथवा लोकसेवाके कामोंमें लगना चाहिये। मनुष्यमें जब तक हिंसकवृत्ति बनी रहती है तब तक आत्मगुणोंका घात होनेके साथ साथ "पापाः सर्वत्र शंकिताः" की नीतिके अनुसार उसमें भयका या प्रतिहिंसाकी आशंकाका सद्भाव बना रहता है। जहाँ भयका सद्भाव वहाँ वीरत्व नहीं—सम्यक्त्व नहीं ❀ और जहाँ वीरत्व नहीं—सम्यक्त्व नहीं वहाँ आत्मोद्धारका नाम नहीं। अथवा यों कहिये कि भयमें संकोच होता है और संकोच विकासको रोकने वाला है। इस लिये आत्मोद्धार अथवा आत्म-विकासके लिये अहिंसाकी बहुत बड़ी जरूरत है और वह वीरता-का चिन्ह है—कायरताका नहीं। कायरताका आधार प्रायः भय होता है, इस लिये कायर मनुष्य अहिंसा धर्मका पात्र नहीं—उसमें अहिंसा ठहर नहीं सकती। वह वीरोंके ही योग्य है और इसी लिये महावीरके धर्ममें उसको प्रधान स्थान प्राप्त है। जो लोग अहिंसा पर कायरताका कलंक लगाते हैं उन्होंने वास्तवमें अहिंसाके रहस्यको समझा ही नहीं। वे अपनी निर्बलता और आत्म-विस्मृतिके कारण कषायोंसे अभिभूत हुए कायरताको वीरता और आत्माके क्रोधादिक-रूप पतनको ही उसका उत्थान समझ बैठे हैं! ऐसे लोगोंकी स्थिति, निःसन्देह बड़ी ही करुणाजनक है।

❀ इसीसे सम्यग्दृष्टिको सप्त प्रकारके भयसे रहित बतलाया है और भयको मिथ्यात्वका चिन्ह तथा स्वानुभवकी क्षतिका परिणाम सूचित किया है। यथा :—

"नापि स्पृष्टो सुदृष्टिर्यः स सप्तभिर्भयैर्मनाक् ॥"

"ततो भीत्याऽनुमेयोऽस्ति मिथ्याभावो जिनागमात्।
सा च भीतिरवश्यं स्याद्धेतोः स्वानुभवक्षतेः ॥" —[illegible]ध्यायी।

सर्वोदय तीर्थ

स्वामी समन्तभद्रने भगवान महावीर और उनके शासनके सम्बन्ध-में और भी कितने ही बहुमूल्य वाक्य कहे हैं जिनमेंसे एक सुन्दर वाक्य मैं यहाँ पर और उद्धृत कर देना चाहता हूँ और वह इस प्रकार है :--

सर्वान्तवत्तद्गुणमुख्यकल्पं, सर्वान्तशून्यं च मिथोऽनपेक्षम् ।
सर्वापदामन्तकरं निरन्तं, सर्वोदयं तीर्थमिदं तवैव ॥ ६१ ॥

—युक्त्यनुशासन ।

इसमें भगवान् महावीरके शासन अथवा उनके परमागम-लक्षण-रूप वाक्यका स्वरूप बतलाते हुए जो उसे ही संपूर्ण आप-दाओंका अंत करने वाला और सबोंके अभ्युदयका कारण तथा पूर्ण अभ्युदयका--विकासका—हेतु ऐसा 'सर्वोदय तीर्थ' बतलाया है वह बिलकुल ठीक है । महावीर भगवानका शासन अनेकान्तके प्रभावसे सकल दुर्नयों तथा मिथ्यादर्शनोंका अन्त (निरसन) करनेवाला है और ये दुर्नय तथा मिथ्यादर्शन ही संसारमें अनेक शारीरिक तथा मानसिक दुःखरूपी आपदाओंके कारण होते हैं । इस लिये जो लोग भगवान् महावीरके शासनका—उनके धर्मका-आश्रय लेते हैं--उसे पूर्णतया अपनाते हैं--उनके मिथ्यादर्शनादिक दूर होकर समस्त दुःख मिट जाते हैं । और वे इस धर्मके प्रसाद-से अपना पूर्ण अभ्युदय सिद्ध कर सकते हैं । महावीरकी ओरसे इस धर्मका द्वार सबके लिये खुला हुआ है * । नीचसे नीच कहा

* जैसा कि जैनग्रन्थोंके निम्न वाक्योंसे ध्वनित है :—

(१) "दीक्षायोग्यास्त्रयो वर्णाश्चतुर्थश्च विधोचितः ।
मनोवाक्कायधर्माय मताः सर्वेऽपि जन्तवः ॥"

[पृष्ठ २२ के फुटनोट का शेष भाग]

"उच्चावचजनप्रायः समयोऽयं जिनेशिनां ।
नैस्किमन्पुरुषे तिष्ठेदेकस्तम्भ इवालयः ॥"
—यशस्तिलके, सोमदेवः ।

(२) "आचाराऽनवद्यत्वं शुचिरुपस्कारः शरीरशुद्धिश्च करोति शूद्रानपि देवद्विजातितपस्विपरिकर्मसुयोग्यान् ।"
—नीतिवाक्यामृते, सोमदेवः ।

(३) "शूद्रोऽप्युपस्करचारवपुः शुध्याऽस्तु तादृशः ।
जात्या हीनोऽपि कालादिलब्धौ ह्यात्मास्ति धर्मभाक्" २-२२॥
—सागार धर्मामृते, आशाधरः ।

इन सब वाक्योंका आशय क्रमशः इस प्रकार है :—

(१) 'ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य ये तीनों वर्ण (आम तौर पर) मुनिदीक्षाके योग्य हैं और चौथा शूद्र वर्ण विधिके द्वारा दीक्षाके योग्य है। (वास्तवमें) मन-वचन-कायसे किये जाने वाले धर्मका अनुष्ठान करनेके लिये सभी जीव अधिकारी हैं।' 'जिनेन्द्रका यह धर्म प्रायः ऊँच और नीच दोनों ही प्रकारके मनुष्योंके आश्रित है; एक स्तंभके आधार पर जैसे मकान नहीं ठहरता उसी प्रकार ऊँच-नीचमेंसे किसी एक ही प्रकारके मनुष्यसमूहके आधार पर धर्म ठहरा हुआ नहीं है।' —यशस्तिलक

(२) 'मद्य-मांसादिकके त्यागरूप आचारकी निर्दोषता, गृह पात्रादिककी पवित्रता और नित्य-स्नानादिके द्वारा शरीरशुद्धि ये तीनों प्रवृत्तियाँ (विधियाँ) शूद्रोंको भी देव, द्विजाति और तपस्वियोंके परिकर्मोंके योग्य बना देती हैं।' —नीतिवाक्यामृत ।

(३) 'आसन और बर्तन आदि उपकरण जिसके शुद्ध हों, मद्य-मांसादिके त्यागसे जिसका आचरण पवित्र हो और नित्य स्नानादिके द्वारा जिसका शरीर शुद्ध रहता हो, ऐसा शूद्र भी ब्राह्मणादिक वर्णोंके सदृश धर्मका पालन करनेके योग्य है; क्योंकि जातिसे हीन आत्मा भी कालादिक लब्धिको पाकर जैनधर्मका अधिकारी होता है।' —सागारधर्मामृत ।

जाने वाला मनुष्य भी इसे धारण करके इसी लोकमें अति उच्च बन सकता है *। इसकी दृष्टिमें कोई जाति गर्हित नहीं—तिरस्कार किये जानेके योग्य नहीं—सर्वत्र गुणोंकी पूज्यता है, वे ही कल्याणकारी हैं, और इसीसे इस धर्ममें एक चांडालको भी व्रतमें युक्त होने पर 'ब्राह्मण' तथा सम्यग्दर्शनसे युक्त होने पर 'देव' माना गया है ×। यह धर्म इन ब्राह्मणादिक जाति-भेदोंको तथा दूसरे चाण्डालादि विशेषोंको वास्तविक ही नहीं मानता किन्तु वृत्ति अथवा आचारभेदके आधार पर कल्पित एवं परिवर्तनशील जानता है और यह स्वीकार करता है कि अपने योग्य गुणोंकी उत्पत्ति पर जाति उत्पन्न होती है और उनके नाश पर नष्ट हो जाती है ‡।

* यो लोके त्वा नतः सोऽतिहीनोऽप्यतिगुरुर्यतः।
बालोऽपि त्वा श्रितं नौति को नो नीतिपुरुः कुतः ॥ ८२ ॥
—जिनशतके, समन्तभद्रः।

× "न जातिर्गर्हिता काचिद् गुणाः कल्याणकारणं।
व्रतस्थमपि चाण्डालं तं देवा ब्राह्मणं विदुः ॥ ११-२०३ ॥"
—पद्मचरिते, रविषेणः।

"सम्यग्दर्शनसम्पन्नमपि मातङ्गदेहजं।
देवा देवं विदुर्भस्मगूढाङ्गारान्तरौजसम्" ॥ २८ ॥
—रत्नकरण्डके, समन्तभद्र।

‡ "चातुर्वर्ण्यं यथान्यच्च चाण्डालादिविशेषणं।
सर्वमाचारभेदेन प्रसिद्धिं भुवने गतं" ॥ ११-२०५ ॥
—पद्मचरिते, रविषेणः।

"आचारमात्रभेदेन जातीनां भेदकल्पनं।
न जातिर्ब्राह्मणीयास्ति नियता क्वापि तात्त्विकी" ॥१७-२४॥
"गुणैः सम्पद्यते जातिर्गुणध्वंसैर्विपद्यते।··· ॥ --३२ ॥
धर्मपरीक्षायां, अमितगतिः।

इन जातियोंका आकृति आदिके भेदको लिये हुए कोई शाश्वत लक्षण भी गो-अश्वादि जातियोंकी तरह मनुष्य-शरीरमें नहीं पाया जाता, प्रत्युत इसके शूद्रादिके योगसे ब्राह्मणी आदिकमें गर्भाधान-की प्रवृत्ति देखी जाती है, जो वास्तविक जातिभेदके विरुद्ध है †। इसी तरह जारजका भी कोई चिन्ह शरीरमें नहीं होता, जिससे उसकी कोई जुदी जाति कल्पित की जाय, और न महज्ज व्यभिचारजात होनेकी वजहसे ही कोई मनुष्य नीच कहा जा सकता है—नीचताका कारण इस धर्ममें 'अनार्य आचरण' अथवा 'म्लेच्छाचार' माना गया है *। वस्तुतः सब मनुष्योंकी एक ही मनुष्य जाति इस धर्मको अभीष्ट है, जो 'मनुष्यजाति' नामक नाम कर्मके उदयसे होती है, और इस दृष्टिसे सब मनुष्य समान हैं—आपसमें भाई भाई हैं—और उन्हें इस धर्मके द्वारा अपने विकास-का पूरा पूरा अधिकार प्राप्त है ‡। इसके सिवाय, किसीके कुलमें कभी कोई दोष लग गया हो उसकी शुद्धिकी, और म्लेच्छों तककी

† "वर्णाकृत्यादिभेदानां देहेऽस्मिन्न च दर्शनात्।
ब्राह्मण्यादिषु शूद्राद्यैर्गर्भाधानप्रवर्तनात् ॥
नास्तिजातिकृतो भेदो मनुष्याणां गवाऽश्ववत्।
आकृतिग्रहणात्तस्मादन्यथा परिकल्पते ॥
—महापुराणे, गुणभद्रः।

* चिन्हानि विटजातस्य सन्ति नांगेषु कानिचित्।
अनार्यमाचरन् किंचिज्जायते नीचगोचरः ॥
—पद्मचरिते, रविषेणः।

‡ मनुष्यजातिरेकैव जातिकर्मोदयोद्भवा।
वृत्तिभेदा हि तद्भेदाच्चातुर्विध्यमिहाश्नुते ॥ ३८--४५ ॥
—आदिपुराणे, जिनसेनः।

"विप्रक्षत्रियविट्शूद्राः प्रोक्ताः क्रियाविशेषतः।
जैनधर्मे पराः शक्तास्ते सर्वे बान्धवोपमाः ॥
—धर्मरसिके, सोमसेनोद्धृतः।

कुलशुद्धि करके उन्हें अपनेमें मिला लेने तथा मुनि-दीक्षा आदिके द्वारा ऊपर उठानेकी स्पष्ट आज्ञाएँ भी इस शासनमें पाई जाती हैं*। जैसा कि निम्न वाक्योंसे प्रकट है :—

१. कुतश्चित्कारणाद्यस्य कुलं सम्प्राप्तदूषणं ।
सोऽपि राजादिसम्मत्या शोधयेत्स्वं यदा कुलम् ॥ ४०-१६८ ॥
तदाऽस्योपनयार्हत्वं पुत्रपौत्रादिसन्ततौ ।
न निषिद्धं हि दीक्षार्हे कुले चेदस्य पूर्वजाः ॥ १६९ ॥

२. स्वदेशेऽनक्षरम्लेच्छान् प्रजाबाधाविधायिनः ।
कुलशुद्धिप्रदानाद्यैः स्वसात्कुर्यादुपक्रमैः ॥ ४२-१७९ ॥
—आदिपुराणे, जिनसेनः ।

३. "म्लेच्छभूमिजमनुष्याणां सकलसंयमग्रहणं कथं भवतीति नाशंकितव्यं । दिग्विजयकाले चक्रवर्तिना सह आर्यखण्डमागतानां म्लेच्छराजानां चक्रवर्त्यादिभिः सह जातवैवाहिकसम्बन्धानां संयमप्रतिपत्तेरविरोधात् । अथवा तत्कन्यानां चक्रवर्त्यादिपरिणीतानां गर्भेषूत्पन्नस्य मातृपक्षापेक्षया म्लेच्छव्यपदेशभाजः संयमसंभवात् तथाजातीयकानां दीक्षार्हत्वे प्रतिषेधाभावात् ॥" —लब्धिसारटीका (गाथा १९३ वीं)

[नोट—म्लेच्छोंकी दीक्षा-योग्यता, सकलसंयम-ग्रहणकी पात्रता और उनके साथ वैवाहिक सम्बन्धादिका यह सब विधान जयधवल सिद्धान्तमें भी इसी क्रमसे प्राकृत और संस्कृत भाषामें दिया है । वहीं परसे भावादिरूप थोड़ासा शब्द-परिवर्तन करके लब्धिसारटीकामें लिया गया मालूम होता है । जैसा कि जयधवलके निम्न शब्दोंसे प्रकट है :—]

"जइ एवं कुदो तत्थ संजमग्गहणसंभवो त्तिणासंकणिज्जं । दिसाविजय पयट्टचक्कवट्टिखंधावारेण सह मज्झिमखंडमागयाणं मिलेच्छरायाणं तत्थ चक्कवट्टिआदीहि सह जादवेवाहियसंबंधाणं संजमपडिवत्तीए विरोहाभावादो । अहवा तत्तत्कन्यकानां चक्रवर्त्यादिपरिणीतानां गर्भेषूत्पन्ना मातृपक्षापेक्षया स्वयमकर्मभूमिजा इतीह विवक्षिताः ततो न किंचिद्विप्रतिषिद्धं । तथाजातीयकानां दीक्षार्हत्वे प्रतिषेधाभावादिति ।" जयधवल, आरा-प्रति, पत्र ८२७-२८

और इस लिये यह शासन सचमुच ही 'सर्वोदय तीर्थ' के पदको प्राप्त है—इस पदके योग्य इसमें सारी ही योग्यताएँ मौजूद हैं—हर कोई भव्य जीव इसका सम्यक् आश्रय लेकर संसारसमुद्रसे पार उतर सकता है।

परन्तु यह समाजका और देशका दुर्भाग्य है जो आज हमने—जिनके हाथों दैवयोगसे यह तीर्थ पड़ा है—इस महान तीर्थकी महिमा तथा उपयोगिताको भुला दिया है; इसे अपना घरेलू, क्षुद्र या असर्वोदय तीर्थकासा रूप देकर इसके चारों तरफ ऊँची ऊँची दीवारें खड़ी कर दी हैं और इसके फाटकमें ताला डाल दिया है। हम लोग न तो खुद ही इससे ठीक लाभ उठाते हैं और न दूसरों को लाभ उठाने देते हैं—महज अपने थोड़ेसे विनोद अथवा क्रीड़ा के स्थल-रूपमें ही हमने इसे रख छोड़ा है और उसीका यह परिणाम है कि जिस 'सर्वोदय' तीर्थ पर रात दिन उपासकोंकी भीड़ और यात्रियोंका मेला सा लगा रहना चाहिये था वहाँ आज सन्नाटा सा छाया हुआ है, जैनियोंकी संख्या भी अंगुलियों पर गिनने लायक रह गई है और जो जैनी कहे जाते हैं उनमें भी जैनत्वका प्रायः कोई स्पष्ट लक्षण दिखलाई नहीं पड़ता—कहीं भी दया, दम, त्याग और समाधिकी तत्परता नजर नहीं आती—लोगोंको महावीरके संदेशकी ही खबर नहीं, और इसीसे संसारमें सर्वत्र दुःख ही दुःख फैला हुआ है।

ऐसी हालतमें अब खास जरूरत है कि इस तीर्थका उद्धार किया जाय, इसकी सब रुकावटोंको दूर कर दिया जाय, इस पर खुले प्रकाश तथा खुली हवाकी व्यवस्था की जाय, इसका फाटक सबोंके लिये हरवक्त खुला रहे, सबोंके लिये इस तीर्थ तक पहुँचने का मार्ग सुगम किया जाय, इसके तटों तथा घाटोंकी मरम्मत कराई जाय, बन्द रहने तथा अर्से तक यथेष्ट व्यवहारमें न आनेके

का ए तीर्थ जल पर जो कुछ काई जम गई है अथवा उसमें कहीं कहीं शैवाल उत्पन्न हो गया है उसे निकाल कर दूर किया जाय और सर्वसाधारणको इस तीर्थके माहात्म्यका पूरा पूरा परिचय कराया जाय। ऐसा होनेपर अथवा इस रूपमें इस तीर्थका उद्धार किया जाने पर आप देखेंगे कि देश-देशान्तरके कितने बेशुमार यात्रियोंकी इस पर भीड़ रहती है, कितने विद्वान इस पर मुग्ध होते हैं, कितने असंख्य प्राणी इसका आश्रय पाकर और इसमें अवगाहन करके अपने दुःख-संतापोंसे छुटकारा पाते हैं और संसारमें कैसी सुख-शांतिकी लहर व्याप्त होती है। स्वामी समन्तभद्रने अपने समयमें, जिसे आज डेढ़ हजार वर्षसे भी ऊपर हो गये हैं, ऐसा ही किया है; और इसीसे कनडी भाषाके एक प्राचीन शिलालेख* में यह उल्लेख मिलता है कि 'स्वामी समन्तभद्र भ० महावीरके तीर्थकी हजारगुनी वृद्धि करते हुए उदयको प्राप्त हुए'—अर्थात्, उन्होंने उसके प्रभावको सारे देश-देशान्तरों व्याप्त कर दिया था। आज भी वैसा ही होना चाहिये। यही भगवान् महावीरकी सच्ची उपासना, सच्ची भक्ति और उनकी सच्ची जयन्ती मनाना होगा।

महावीरके इस अनेकान्त-शासन-रूप तीर्थमें यह खूबी खुद मौजूद है कि इससे भरपेट अथवा यथेष्ट द्वेष रखने वाला मनुष्य भी यदि समदृष्टि (मध्यस्थवृत्ति) हुआ उपपत्ति-चक्षुसे (मात्सर्यके त्यागपूर्वक युक्तिसंगत समाधानकी दृष्टिसे) इसका अवलोकन और परीक्षण करता है तो अवश्य ही उसका मान-शृंग खण्डित हो जाता है—सर्वथा एकान्तरूप मिथ्यामतका आग्रह छूट जाता है—और वह अभद्र अथवा मिथ्यादृष्टि होता हुआ भी सब ओरसे

* यह शिलालेख बेलूर ताल्लुकेका शिलालेख नम्बर १७ है, जो रामानुजाचार्य-मन्दिरके अहातेके अन्दर सौम्यनायकी-मन्दिरकी छतके एक पत्थर पर उत्कीर्ण है और शक संवत् १०५९ का लिखा हुआ है। देखो, एपिग्रेफिका कर्णाटिकाकी जिल्द पाँचवीं, अथवा स्वामी समन्तभद्र (इतिहास) पृष्ठ ४६वाँ।

भद्ररूप एवं सम्यग्दृष्टि बन जाता है। अथवा यूं कहिये कि भ० महावीरके शासन-तीर्थका उपासक और अनुयायी हो जाता है। इसी बातको स्वामी समन्तभद्रने अपने निम्न वाक्य-द्वारा व्यक्त किया है—

कामं द्विषन्नप्युपपत्तिचक्षुः समीक्षतां ते समदृष्टिरिष्टम्।
त्वयि ध्रुवं खण्डितमानशृंगो भवत्यभद्रोऽपि समन्तभद्रः॥

—युक्त्यनुशासन।

अतः इस तीर्थके प्रचार-विषयमें ज़रा भी संकोचकी ज़रूरत नहीं है, पूर्ण उदारताके साथ इसका उपर्युक्त रीतिसे योग्यप्रचारकों-के द्वारा खुला प्रचार होना चाहिये और सबोंको इस तीर्थकी परीक्षा-का तथा इसके गुणोंको मालूम करके इससे यथेष्ट लाभ उठानेका पूरा अवसर दिया जाना चाहिये। योग्य प्रचारकोंका यह काम है कि वे जैसे तैसे जनतामें मध्यस्थभावको जाग्रत करें, ईर्षा-द्वेषादि-रूप मत्सर भावको हटाएँ, हृदयोंको युक्तियोंसे संस्कारित कर उदार बनाएँ, उनमें सत्यकी जिज्ञासा उत्पन्न करें और उस सत्य-की दर्शनप्राप्तिके लिये लोगोंकी समाधान दृष्टिको खोलें।

महावीर सन्देश

हमारा इस वक्त यह ख़ास कर्तव्य है कि हम भगवान् महावीरके सन्देशको—उनके शिक्षासमूहको—मालूम करें, उस पर खुद अमल करें और दूसरोंसे अमल करानेके लिये उसका घर घरमें प्रचार करें। बहुतसे जैन शास्त्रोंका अध्ययन, मनन और मथन करने पर मुझे भगवान् महावीरका जो सन्देश मालूम हुआ है उसे मैंने एक छोटीसी कवितामें निबद्ध कर दिया है। यहाँ पर उसका दे दिया जाना भी कुछ अनुचित न होगा। उससे थोड़ेमें ही—सूत्ररूपसे—महावीर भगवान्की बहुतसी शिक्षाओंका अनुभव हो सकेगा और उन पर चलकर—उन्हें अपने जीवनमें उतारकर—हम अपना तथा दूसरों का बहुत कुछ हित साधन कर सकेंगे। वह संदेश इस प्रकार है:—

यही है महावीर-सन्देश ।
विपुलाचल पर दिया गया जो प्रमुख धर्म-उपदेश ॥ यही० ॥
"सब जीवोंको तुम अपनाओ, हर उनके दुख-क्लेश ।
असद्भाव रक्खो न किसीसे, हो अरि क्यों न विशेष ॥१॥
वैरीका उद्धार श्रेष्ठ है, कीजे सविधि-विशेष ।
वैर छुटे, उपजे मति जिससे, वही यत्न यत्नेश ॥ २ ॥
घृणा पापसे हो, पापीसे नहीं कभी लव-लेश ।
भूल सुझा कर प्रेम-मार्गसे, करो उसे पुण्येश ॥ ३ ॥
तज एकान्त-कदाग्रह-दुर्गुण, बनो उदार विशेष ।
रह प्रसन्नचित सदा, करो तुम मनन तत्त्व-उपदेश ॥ ४ ॥
जीतो राग-द्वेष-भय-इन्द्रिय-मोह-कषाय अशेष ।
धरो धैर्य, समचित्त रहो, औ' सुख-दुखमें सविशेष ॥ ५ ॥
अहंकार-ममकार तजो, जो अवनतिकार विशेष ।
तप-संयममें रत हो, त्यागो तृष्णा भाव अशेष ॥ ६ ॥
'वीर' उपासक बनो सत्यके, तज मिथ्याऽभिनिवेश ।
विपदाओंसे मत घबराओ, धरो न कोपावेश ॥ ७ ॥
संज्ञानी-संदृष्टि बनो, औ' तजो भाव संक्लेश ।
सदाचार पालो दृढ होकर, रहे प्रमाद न लेश ॥ ८ ॥
सादा रहन-सहन-भोजन हो, सादा भूषा-वेष ।
विश्व-प्रेम जाग्रत कर उरमें, करो कर्म निःशेष ॥ ९ ॥
हो सबका कल्याण, भावना ऐसी रहे हमेश ।
दया-लोकसेवा-रत चित हो, और न कुछ आदेश ॥१०॥

इस पर चलनेसे ही होगा, विकसित स्वात्म-प्रदेश ।
आत्म-ज्योति जगेगी ऐसे जैसे उदित दिनेश ॥११॥"
यही है महावीर-सन्देश० ॥

महावीरका समय

अब देखना यह है कि भगवान महावीरको अवतार लिये ठीक कितने वर्ष हुए हैं। महावीरकी आयु कुछ कम ७२ वर्षकी—७१ वर्ष, ६ मास, १८ दिनकी—थी। यदि महावीरका निर्वाण-समय ठीक मालूम हो तो उनके अवतार-समयको अथवा जयन्तीके अवसरों पर उनकी वर्षगांठ-संख्याको सूचित करनेमे कुछ भी देर न लगे। परन्तु निर्वाण-समय अर्सेसे विवादग्रस्त चल रहा है—प्रचलित वीरनिर्वाण-संवत् पर आपत्ति की जाती है—कितने ही देशी विदेशी विद्वानोंका उसके विषयमें मतभेद है; और उसका कारण साहित्यकी कुछ पुरानी गड़बड़, अर्थ समझनेकी ग़लती अथवा कालगणनाकी भूल जान पड़ती है। यदि इस गड़बड़, ग़लती अथवा भूलका ठीक पता चल जाय तो समयका निर्णय सहज हीमें हो सकता है और उससे बहुत काम निकल सकता है; क्योंकि महावीरके समयका प्रश्न जैन इतिहासके लिये ही नहीं किन्तु भारतके इतिहासके लिये भी एक बड़े ही महत्वका प्रश्न है। इसीसे अनेक विद्वानोंने उसको हल करनेके लिये बहुत परिश्रम किया है और उससे कितनी ही नई नई बात प्रकाशमे आई हैं। परन्तु फिर भी, इस विषयमें, उन्हें जैसी चाहिये वैसी सफलता नहीं मिली—बल्कि कुछ नई उलझनें भी पैदा हो गई हैं—और इस लिये यह प्रश्न अभी तक बराबर विचारके लिये चला ही जाता है। मेरी इच्छा थी कि मै इस विषयमें कुछ गहरा उतर कर

पूरी तफ़सीलके साथ एक विस्तृत लेख लिखूं परन्तु समयकी कमी आदिके कारण वैसा न करके, संक्षेपमें ही, अपनी खोजका एक सार भाग पाठकोंके सामने रखता हूँ। आशा है कि सहृदय पाठक इस परसे ही, उस गड़बड़, ग़लती अथवा भूलको मालूम करके, समयका ठीक निर्णय करनेमें समर्थ हो सकेंगे।

आजकलजो वीर-निर्वाण-संवत् प्रचलित है और कार्तिक शुक्ला प्रतिपदासे प्रारम्भ होता है वह २४६० है। इस संवत्का एक आधार 'त्रिलोकसार' की निम्न गाथा है, जो श्रीनेमिचन्द्र सिद्धान्त-चक्रवर्तीका बनाया हुआ है:—

६०५ ५
पणछस्सयवस्सं पणमासजुदं गमिय वीरणिव्वुइदो।
३९४ ७
सगराजो तो कक्की चदुणवतियमहियसगमासं ॥८५०

इसमें बतलाया गया है कि 'महावीरके निर्वाणसे ६०५ वर्ष ५ महीने बाद शक राजा हुआ, और शक राजासे ३९४ वर्ष ७ महीने बाद कल्की राजा हुआ।' शकराजाके इस समयका समर्थन 'हरिवंशपुराण' नामके एक दूसरे प्राचीन ग्रन्थसे भी होता है जो त्रिलोकसारसे प्रायः दो सौ वर्ष पहलेका बना हुआ है और जिसे श्रीजिनसेनाचार्यने शक सं० ७०५ में बनाकर समाप्त किया है। यथा :—

वर्षाणां षट्शतीं त्यक्त्वा पंचाग्रां मासपंचकम्।
मुक्तिं गते महावीरे शकराजस्ततोऽभवत् ॥६०-५४९॥

इतना ही नहीं, बल्कि और भी प्राचीन ग्रन्थोंमें इस समयका उल्लेख पाया जाता है, जिसका एक उदाहरण 'तिलोयपण्णत्ति' (त्रिलोकप्रज्ञप्ति) का निम्न वाक्य है—

णिव्वाणे वीरजिणे छव्वाससदेसु पंचवरिसेसु।

पणमासेसु गदेसु संजादो सगणिओ अहवा[1] ॥

शकका यह समय ही शक-संवत्की प्रवृत्तिका काल है, और इसका समर्थन एक पुरातन श्लोकसे भी होता है, जिसे श्वेताम्बराचार्य श्रीमेरुतुंगने अपनी 'विचारश्रेणि' में निम्न प्रकारसे उद्धृत किया है:—

श्रीवीरनिर्वृतेर्वर्षैः षड्भिः पंचोत्तरैः शतैः ।
शाकसंवत्सरस्यैषा प्रवृत्तिर्भरतेऽभवत् ॥

इसमें, स्थूलरूपसे वर्षोंकी ही गणना करते हुए, साफ़ लिखा है कि 'महावीरके निर्वाणसे ६०५ वर्ष बाद इस भारतवर्षमें शक-संवत्सरकी प्रवृत्ति हुई ।'

श्रीवीरसेनाचार्य-प्रणीत 'धवल' नामके सिद्धान्त-भाष्यसे—जिसे इस निबंधमें 'धवल सिद्धान्त' नामसे भी उल्लेखित किया गया है—इस विषयका और भी ज्यादा समर्थन होता है; क्योंकि इस ग्रंथमें महावीरके निर्वाणके बाद केवलियों तथा श्रुतधर-आचार्योंकी परम्पराका उल्लेख करते हुए और उसका काल परिमाण ६८३ वर्ष बतलाते हुए यह स्पष्टरूपसे निर्दिष्ट किया है कि इस ६८३ वर्षके कालमेंसे ७७ वर्ष ७ महीने घटा देने पर जो ६०५ वर्ष ५ महीनेका काल अवशिष्ट रहता है वही महावीरके निर्वाण-दिवससे शककालकी आदि—शक संवत्की प्रवृत्ति—तकका मध्यवर्ती काल है; अर्थात् महावीरके निर्वाणदिवससे ६०५ वर्ष ५ महीनेके बाद शकसंवत्का प्रारंभ हुआ है । साथ ही, इस मान्यताके लिये कारणका निर्देश करते हुए, एक प्राचीन गाथाके आधार पर यह भी प्रतिपादन किया है कि इस ६०५ वर्ष ५ महीने-

१ त्रिलोकप्रज्ञप्तिमें शककालका कुछ और भी उल्लेख पाया जाता है और इसीसे यहाँ 'अथवा' शब्दका प्रयोग किया गया है ।

के कालमें शककालको—शक संवत्की वर्षादि-संख्याको—जोड़ देनेसे महावीरका निर्वाणकाल—निर्वाण-संवत्का ठीक परिमाण —आ जाता है। और इस तरह वीरनिर्वाण-संवत् मालूम करने की स्पष्ट विधि भी सूचित की है। धवलके वे वाक्य इस प्रकार हैं:-

"सव्वकालसमासो तेयासीदिअहियछस्सदमेत्तो (६८३)। पुणो एत्थ सत्तमासाहियसत्तहत्तरिवासेसु (७७-७) अवणीदेसु पंचमासाहियपंचुत्तरछस्सदवासाणि (६०५-५) हवंति, एसो वीरजिणिंदणिव्वाणगददिवसादो जाव सगकालस्स आदी होदि तावदिय कालो। कुदो? एदम्मि काले सगणरिंदकालस्स पक्खित्ते वड्ढमाणजिणणिव्वुदकालागमणादो। वुत्तंच—

* पंच य मासा पंच य वासा छच्चेव होंति वाससया।
सगकालेण य सहिया थावेयव्वो तदो रासी॥"

—देखो, आरा जैनसिद्धान्तभवनकी प्रति, पत्र ५३७

इन सब प्रमाणोंसे इस विषयमें कोई संदेह नहीं रहता कि

* इस प्राचीन गाथाका जो पूर्वार्ध है वही श्वेताम्बरोंके 'तित्थोगाली पइन्नय' नामक प्राचीन प्रकरणकी निम्न गाथाका पूर्वार्ध है—

पंच य मासा पंच य वासा छच्चेव होंति वाससया।
परिणिव्वुअस्सऽरिहतो तो उप्पन्नो सगो राया॥ ६२३॥

और इससे यह साफ़ जाना जाता है कि 'तित्थोगाली' की इस गाथामें जो ६०५ वर्ष ५ महीनेके बाद शकराजाका उत्पन्न होना लिखा है वह शककालके उत्पन्न होने अर्थात् शकसंवत्के प्रवृत्त होनेके आशयको लिये हुए है। और इस तरह महावीरके इस निर्वाणसमय-सम्बधमें दोनों सम्प्रदायोंकी एक वाक्यता पाई जाती है।

शकसंवत्के प्रारंभ होनेसे ६०५ वर्ष ५ महीने पहले महावीरका निर्वाण हुआ है।

शक-संवत्के इस पूर्ववर्ती समयको वर्तमान शक-संवत् १८५५ में जोड़ देनेसे २४६० की उपलब्धि होती है, और यही इस वक्त प्रचलित वीरनिर्वाण-संवत्की वर्षसंख्या है। शक-संवत् और विक्रम-संवत्में १३५ वर्षका प्रसिद्ध अन्तर है। यह १३५ वर्षका अन्तर यदि उक्त ६०५ वर्षमेंसे घटा दिया जाय तो अवशिष्ट ४७० वर्षका काल रहता है, और यही स्थूल रूपसे वीरनिर्वाणके बाद विक्रम-संवत्की प्रवृत्तिका काल है, जिसका शुद्ध अथवा पूर्णरूप ४७० वर्ष ५ महीने है और जो ईस्वी सन्से प्राय: ५२८ वर्ष पहले वीरनिर्वाणका होना बतलाता है। और जिसे दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों ही सम्प्रदाय मानते हैं।

अब मैं इतना और बतला देना चाहता हूँ कि त्रिलोकसारकी उक्त गाथामें शकराजाके समयका—वीरनिर्वाणसे ६०५ वर्ष ५ महीने पहलेका—जो उल्लेख है उसमें उसका राज्यकाल भी शामिल है; क्योंकि एक तो यहाँ 'सगराजो' के बाद 'तो' शब्दका प्रयोग किया गया है जो 'तत:' (तत्पश्चात्) का वाचक है और उससे यह स्पष्ट ध्वनि निकलती है कि शकराजाकी सत्ता न रहने पर अथवा उसकी मृत्युसे ३९४ वर्ष ७ महीने बाद कल्की राजा हुआ। दूसरे, इस गाथामें कल्कीका जो समय वीरनिर्वाणसे एक हजार वर्ष तक (६०५ वर्ष ५ मास + ३९४ व० ७ मा०) बतलाया गया है उसमें नियमानुसार कल्कीका राज्य काल भी आ जाता है, जो एक हजार वर्षके भीतर सीमित रहता है। और तभी हर हजार वर्ष पीछे एक कल्कीके होनेका वह नियम बन सकता है जो त्रिलोकसारादि ग्रंथोंके निम्न वाक्योंमें पाया जाता है:—

इदि पडिसहस्सवस्सं वीसे कक्कीणदिक्कमे चरिमो।

जलमंथणो भविस्सदि कक्की सम्मग्गमत्थणओ ॥ ८५७ ॥

—त्रिलोकसार ।

मुक्तिं गते महावीरे प्रतिवर्षसहस्रकम् ।
एकैको जायते कल्की जिनधर्म-विरोधकः ॥

—हरिवंशपुराण ।

एवं वस्ससहस्से पुह कक्की हवेइ इक्केको ।

—त्रिलोकप्रज्ञप्ति ।

इसके सिवाय, हरिवंशपुराण तथा त्रिलोकप्रज्ञप्तिमें महावीरके पश्चात् एक हज़ार वर्षके भीतर होने वाले राज्योंके समयकी जो गणना की गई है उसमें साफ़ तौर पर कल्किराज्यके ४२ वर्ष शामिल किये गये हैं*। ऐसी हालतमें यह स्पष्ट है कि त्रिलोकसारकी उक्त गाथामें शक और कल्कीका जो समय दिया है वह अलग अलग उनके राज्य-कालकी समाप्तिका सूचक है। और इस लिये यह नहीं कहा जा सकता कि शक राजाका राज्यकाल वीर-निर्वाणसे ६०५ वर्ष ५ महीने बाद प्रारंभ हुआ और उसकी—उसके कतिपय वर्षात्मक स्थितिकालकी—समाप्तिके बाद ३९४ वर्ष ७ महीने और बीतने पर कल्किका राज्यारंभ हुआ। ऐसा कहने

* श्रीयुत के० पी० जायसवाल बैरिष्टर पटनाने, जुलाई सन् १९१७ की 'इन्डियन एँटिक्वेरी' में प्रकाशित अपने एक लेखमें, हरिवंशपुराणके 'द्विचत्वारिंशदेवातः कल्किराजस्य राजता' वाक्यके सामने मौजूद होते हुए भी, जो यह लिख दिया है कि इस पुराणमें कल्किराज्यके वर्ष नहीं दिये, यह बड़े ही आश्चर्यकी बात है। आपका इस पुराणके आधार पर गुप्तराज्य और कल्किराज्यके बीच ४२ वर्षका अन्तर बतलाना और कल्किके अस्तकालको उसका उदयकाल (rise of Kalki) सूचित कर देना बहुत बड़ी ग़लती तथा भूल है।

पर कल्किका अस्तित्वसमय वीरनिर्वाणसे एक हज़ार वर्षके भीतर न रहकर ११०० वर्षके करीब हो जाता है और उससे एक हज़ार की नियत संख्यामें तथा दूसरे प्राचीन ग्रन्थोंके कथनमें भी बाधा आती है और एक प्रकारसे सारी ही कालगणना बिगड़ जाती है *। इसी तरह पर यह भी स्पष्ट है कि हरिवंशपुराण और त्रिलोकप्रज्ञप्तिके उक्त शक-काल-सूचक पद्योंमें जो क्रमशः **'अभवत्'** और **'संजादो'** (संजातः) पदोंका प्रयोग किया गया है उनका 'हुआ—शकराजा हुआ—अर्थ शकराजाके अस्तित्व-कालकी समाप्तिका सूचक है, आरंभसूचक अथवा शकराजाकी शरीरोत्पत्ति या उसके जन्मका सूचक नहीं। और त्रिलोकसारकी गाथामें इन्हीं जैसा कोई क्रियापद अध्याहृत (understood) है।

यहाँ पर एक उदाहरण-द्वारा मैं इस विषयको और भी स्पष्ट कर देना चाहता हूँ। कहा जाता है और आम तौर पर लिखनेमें भी आता है कि भगवान् पार्श्वनाथसे भगवान् महावीर ढाई सौ (२५०) वर्षके बाद हुए। परन्तु इस ढाईसौ वर्ष बाद होनेका क्या अर्थ? क्या पार्श्वनाथके जन्मसे महावीरका जन्म ढाई सौ वर्ष बाद हुआ? या पार्श्वनाथके निर्वाणसे महावीरका जन्म ढाई सौ वर्ष बाद हुआ? अथवा पार्श्वनाथके निर्वाणसे महावीरको केवल-

* हाँ, शक-संवत् यदि वास्तवमें शकराजाके राज्यारंभसे ही प्रारंभ हुआ हो तो यह कहा जा सकता है कि त्रिलोकसारकी उक्त गाथामें शक-के ३९४ वर्ष ७ महीने बाद जो कल्कीका होना लिखा है उसमें शक और कल्की दोनों राजाओंका राज्यकाल शामिल है। परन्तु इस कथनमें यह विषमता बनी ही रहेगी कि अमुक अमुक वर्षसंख्याके बाद 'शकराजा हुआ' तथा 'कल्किराजा हुआ' इन दो सदृश वाक्योंमेंसे एकमें तो राज्यकालको शामिल नहीं किया और दूसरेमें वह शामिल कर लिया गया है, जो कथन-पद्धतिके विरुद्ध है।

ज्ञान ढाईसौ वर्ष बाद उत्पन्न हुआ ? तीनोंमेंसे एक भी बात सत्य नहीं है । तब सत्य क्या है ? इसका उत्तर श्रीगुणभद्राचार्यके निम्न वाक्यमें मिलता है :—

पार्श्वेश-तीर्थ-सन्ताने पंचाशद्द्विशताब्दके ।
तदभ्यन्तरवर्त्यायुर्महावीरोऽत्रमजातवान् ।। २७९ ।।

महापुराण, ७४वाँ पर्व ।

इसमें बतलाया है कि 'श्रीपार्श्वनाथ तीर्थंकरसे ढाई सौ वर्षके बाद, इसी समयके भीतर अपनी आयुको लिये हुए, महावीर भगवान् हुए' अर्थात् पार्श्वनाथके निर्वाणसे महावीरका निर्वाण ढाई सौ वर्षके बाद हुआ । इस वाक्यमें 'तदभ्यन्तरवर्त्यायुः' (इसी समयके भीतर अपनी आयुको लिये हुए) यह पद महावीर-का विशेषण है । इस विशेषण-पदके निकाल देनेसे इस वाक्यकी जैसी स्थिति रहती है और जिस स्थितिमें आम तौर पर महावीर-के समयका उल्लेख किया जाता है ठीक वही स्थिति त्रिलोकसारकी उक्त गाथा तथा हरिवंशपुराणादिकके उन शककालसूचक पद्योंकी है । उनमें शकराजाके विशेषण रूपसे 'तदभ्यन्तरवर्त्यायु' इस आशयका पद अध्याहृत है, जिसे अर्थका स्पष्टीकरण करते हुए ऊपरसे लगाना चाहिये । बहुत सी कालगणनाका यह विशेषण-पद अध्याहृत-रूपमें ही प्राण जान पड़ता है । और इसलिये जहाँ कोई बात स्पष्टतया अथवा प्रकरणसे इसके विरुद्ध न हो वहाँ ऐसे अव-सरों पर इस पदका आशय ज़रूर लिया जाना चाहिये । अस्तु ।

जब यह स्पष्ट हो जाता है कि वीरनिर्वाणसे ६०५ वर्ष ५ महीने पर शकराजाके राज्यकालकी समाप्ति हुई और यह काल ही शक-संवत्की प्रवृत्तिका काल है—जैसा कि ऊपर ज़ाहिर किया जा चुका है—तब यह स्वतः मानना पड़ता है कि विक्रमराजाका

राज्यकाल भी वीरनिर्वाणसे ४७० वर्ष ५ महीनेके अनन्तर समाप्त हो गया था और यही विक्रमसंवत्की प्रवृत्तिका काल है—तभी दोनों संवतोंमें १३५ वर्षका प्रसिद्ध अन्तर बनता है। और इस लिये विक्रम-संवत्को भी विक्रमके जन्म या राज्यारोहणका संवत् न कह कर, वीरनिर्वाण या बुद्धनिर्वाण-संवतादिककी तरह, उसको स्मृति या यादगारमें क़ायम किया हुआ मृत्यु-संवत् कहना चाहिये। विक्रमसंवत् विक्रमकी मृत्युका संवत् है, यह बात कुछ दूसरे प्राचीन प्रमाणोंसे भी जानी जाती है, जिसका एक नमूना श्रीअमितगति आचार्यका यह वाक्य

समारूढे पूतत्रिदशवसतिं विक्रमनृपे
सहस्रे वर्षाणां प्रभवति हि पंचाशदधिके।
समाप्तं पंचम्यामवति धरिणीं मुंजनृपतौ
सितें पक्षे पौषे बुधहितमिदं शास्त्रमनघम्॥

इसमें, 'सुभाषितरत्नसंदोह' नामक ग्रन्थको समाप्त करते हुए, स्पष्ट लिखा है कि विक्रमराजाके स्वर्गारोहणके बाद जब १०५०वाँ वर्ष (संवत्) बीत रहा था और राजा मुंज पृथ्वीका पालन कर रहा था उस समय पौष शुक्ला पंचमीके दिन यह पवित्र तथा हितकारी शास्त्र समाप्त किया गया है।' इन्हीं अमितगति आचार्य ने अपने दूसरे ग्रन्थ 'धर्मपरीक्षा'की समाप्तिका समय इस प्रकार दिया है :—

संवत्सराणां विगते सहस्रे ससप्ततौ विक्रम पार्थिवस्य।
इदं निषिध्यान्यमतं समाप्तं जैनेन्द्रधर्मामृतयुक्तिशास्त्रम्॥

इस पद्यमें, यद्यपि, विक्रमसंवत् १०७० के विगत होने पर ग्रंथकी समाप्तिका उल्लेख है और उसे स्वर्गारोहण अथवा मृत्युका

संवत् ऐसा कुछ नाम नहीं दिया; फिर भी इस पद्यको पहले पद्य-की रोशनीमें पढ़नेसे इस विषयमें कोई संदेह नहीं रहता कि अमितगति आचार्यने प्रचलित विक्रमसंवत्का ही अपने ग्रन्थोंमें प्रयोग किया है और वह उस वक्त विक्रमकी मृत्युका संवत् माना जाता था। संवत्के साथमें विक्रमकी मृत्युका उल्लेख किया जाना अथवा न किया जाना एक ही बात थी—उससे कोई भेद नहीं पड़ता था—इसीलिये इस पद्यमें उसका उल्लेख नहीं किया गया। पहले पद्यमें मुंजके राज्यकालका उल्लेख इस विषयका और भी ख़ास तौरसे समर्थक है; क्योंकि इतिहाससे प्रचलित वि० संवत् १०५० में मुंजका राज्यासीन होना पाया जाता है। और इसलिये यह नहीं कहा जा सकता कि अमितगतिने प्रचलित विक्रमसंवतसे भिन्न किसी दूसरे ही विक्रमसंवत्का उल्लेख अपने उक्त पद्योंमें किया है। ऐसा कहने पर मृत्युसंवत् १०५० के समय जन्मसंवत् ११३० अथवा राज्यसंवत् ११९२ का प्रचलित होना ठहरता है और उस वक्त तक मुंजके जीवित रहनेका कोई प्रमाण इतिहासमें नहीं मिलता। मुंजके उत्तराधिकारी राजा भोजका भी वि० सं० १११२ से पूर्व ही देहावसान होना पाया जाता है।

अमितगति आचार्यके समयमें, जिसे आज साढ़े नौ सौ वर्ष-के करीब हो गये हैं, विक्रमसंवत् विक्रमकी मृत्युका संवत् माना जाता था यह वात उनसे कुछ समय पहलेके बने हुए देवसेनाचार्य-के ग्रन्थोंसे भी प्रमाणित होती है। देवसेनाचार्यने अपना 'दर्शन-सार' ग्रंथ विक्रमसंवत् ९९० में बनाकर समाप्त किया है। इसमें कितने ही स्थानों पर विक्रमसंवत्का उल्लेख करते हुए उसे विक्रमकी मृत्युका संवत् सूचित किया है; जैसा कि इसकी निम्न गाथाओंसे प्रकट है:—

छत्तीसे वरिससये विक्कमरायस्स मरणपत्तस्स।

सोरट्ठे वलहीए उप्पण्णो सेवडो संघो ॥ ११ ॥
पंचसए छव्वीसे विक्कमरायस्स मरणपत्तस्स ।
दक्खिणमहुराजादो दाविडसंघो महामोहो ॥२८॥
सत्तसए तेवण्णे विक्कमरायस्स मरणपत्तस्स ।
णंदियडे वरगामे कट्ठो संघो मुणेयव्वो ॥३८॥

विक्रमसंवत्‌के उल्लेखको लिये हुए जितने ग्रन्थ अभी तक उपलब्ध हुए हैं उनमें, जहाँ तक मुझे मालूम है, सबसे प्राचीन ग्रंथ यही है। इससे पहले धनपालकी 'पाइअलच्छी नाममाला' (वि० सं० १०१९) और उससे भी पहले अमितगतिका 'सुभाषितरत्न-संदोह' ग्रंथ पुरातत्त्वज्ञों-द्वारा प्राचीन माना जाता था। हाँ, शिलालेखोंमें एक शिलालेख इससे भी पहिले विक्रमसंवत्‌के उल्लेख-को लिये हुए है और वह चाहमान चण्ड महासेनका शिलालेख है, जो धौलपुरसे मिला है और जिसमें उसके लिखे जानेका संवत् ८९८ दिया है; जैसा कि उसके निम्न अंशसे प्रकट है:—

"वसु नव अष्टौ वर्षा गतस्य कालस्य विक्रमाख्यस्य ।"

यह अंश विक्रमसंवत्‌को विक्रमकी मृत्युका संवत् बतलानेमें कोई बाधक नहीं है और न 'पाइअलच्छी नाममाला'का '**विक्कम कालस्स गए अउणत्ती [णवी] सुत्तरे सहस्सम्मि**' अंश ही इसमें कोई बाधक प्रतीत होता है, बल्कि ये दोनों ही अंश एक प्रकारसे साधक जान पड़ते हैं; क्योंकि इनमें जिस विक्रमकालके बीतनेकी बात कही गई है और उसके बादके बीते हुए वर्षोंकी गणना की गई है वह विक्रमका अस्तित्वकाल—उसकी मृत्युपर्यंत-का समय—ही जान पड़ता है। उसीका मृत्युके बाद बीतना प्रारंभ हुआ है। इसके सिवाय, दर्शनसारमें एक यह भी उल्लेख मिलता है कि उसकी गाथाएँ पूर्वाचार्योंकी रची हुई हैं और उन्हें एकत्र

संचय करके ही यह ग्रंथ बनाया गया है। यथाः—

पुव्वायरियकयाइं गाहाइं संचिऊण एयत्थ।
सिरिदेवसेणगणिणा धाराए संवसंतेण ॥४६॥
रइओ दंसणसारो हारो भव्वाण णवसए णवए।
सिरिपासणाहगेहे सुविसुद्धे माहसुद्ध दसमीए ॥५०॥

इससे उक्त गाथाओंके और भी अधिक प्राचीन होनेकी संभावना है और उनकी प्राचीनतासे विक्रमसंवत्को विक्रमकी मृत्युका संवत् माननेकी बात और भी ज्यादा प्राचीन हो जाती है। विक्रमसंवत्की यह मान्यता अमितगतिके बाद भी अर्से तक चली गई मालूम होती है। इसीसे १६वीं शताब्दी तथा उसके करीबके बने हुए ग्रन्थोंमें भी उसका उल्लेख पाया जाता है, जिसके दो नमूने इस प्रकार हैं :—

"मृते विक्रमभूपाले सप्तविंशतिसंयुते।
दशपंचशतेऽब्दानामतीते शृणुतापरम् ॥१५७॥
लुङ्कामतमभूदेकं .... ॥१५८॥

—रत्ननन्दिकृत, भद्रबाहुचरित्र।

"सषट्त्रिंशे शतेऽब्दानां मृते विक्रमराजनि।
सौराष्ट्रे वल्लभीपुर्यामभूत्तत्कथ्यते मया ॥१८८॥

—वामदेवकृत, भावसंग्रह।

इस संपूर्ण विवेचन परसे यह बात भले प्रकार स्पष्ट हो जाती है कि प्रचलित विक्रमसंवत् विक्रमकी मृत्युका संवत् है, जो वीरनिर्वाणसे ४७० वर्ष ५ महीनेके बाद प्रारंभ होता है। और इस लिये वीरनिर्वाणसे ४७० वर्ष बाद विक्रम राजाका जन्म होनेकी जो बात कही जाती है और उसके आधार पर प्रचलित वीरनिर्वाणसंवत् पर आपत्ति की जाती है वह ठीक नहीं है। और न यह

बात हो ठीक बैठती है कि इस विक्रमने १८ वर्षकी अवस्थामें राज्य प्राप्त करके उसी वक्तमें अपना संवत् प्रचलित किया है। ऐसा माननेके लिये इतिहासमें कोई भी समर्थ कारण नहीं है। हो सकता है कि यह एक विक्रमकी बातको दूसरे विक्रमके साथ जोड़ देनेका ही नतीजा हो।

इसके सिवाय, नन्दिसंघकी एक पट्टावलीमें—विक्रमप्रबन्धमें भी—जो यह वाक्य दिया है कि—

"सत्तरिचदुसदजुत्तो जिणकाला विक्कमो हवइ जम्मो।"

अर्थात्—'जिनकालसे (महावीरके निर्वाणसे) *विक्रमजन्म ४७० वर्षके अन्तरको लिये हुए है'। और दूसरी पट्टावलीमें जो आचार्योंके समयकी गणना विक्रमके राज्यारोहण-कालसे—उक्त जन्मकालमें १८ की वृद्धि करके—की गई है वह सब उक्त शककालको और उसके आधार पर बने हुए विक्रमकालको ठीक न समझनेका परिणाम है, अथवा यों कहिये कि पार्श्वनाथके निर्वाणसे ढाईसौ वर्ष बाद महावीरका जन्म या केवलज्ञानको प्राप्त होना मान लेने जैसी ग़लती है।

ऐसी हालतमें कुछ जैन, अजैन तथा पश्चिमीय और पूर्वीय विद्वानोंने पट्टावलियोंको लेकर जो प्रचलित वीरनिर्वाणसंवत् पर यह आपत्ति की है कि 'उसकी वर्षसंख्यामें १८ वर्षकी कमी है जिसे पूरा किया जाना चाहिये' वह समीचीन मालूम नहीं होती, और इसलिये मान्य किये जानेके योग्य नहीं। उसके अनुसार वीरनिर्वाणसे ४८८ वर्ष बाद विक्रमसंवतका प्रचलित होना माननेसे विक्रम और शक संवतोंके बीच जो १३५ वर्षका प्रसिद्ध अंतर

* विक्रमजन्मका आशय यदि विक्रमकाल अथवा विक्रमसंवत्की उत्पत्तिसे लिया जाय तो यह कथन ठीक हो सकता है। क्योंकि विक्रमसंवत्की उत्पत्ति विक्रमकी मृत्युके बाद हुई पाई जाती है।

है वह भी बिगड़ जाता है—सदोष ठहरता है—अथवा शककाल पर भी आपत्ति लाज़िमी आती है जो हमारा इस कालगणनाका मूलाधार है, जिस पर कोई आपत्ति नहीं की गई और न यह सिद्ध किया गया कि शकराजाने भी वीरनिर्वाणसे ६०५ वर्ष ५ महीनेके बाद जन्म लेकर १८वर्षकी अवस्थामें राज्याभिषेकके समय अपना संवत् प्रचलित किया है। प्रत्युत इसके, यह बात ऊपरके प्रमाणों-से भले प्रकार सिद्ध है कि यह समय शकसंवत्की प्रवृत्तिका समय है—चाहे वह संवत् शकराजाके राज्यकालकी समाप्ति पर प्रवृत्त हुआ हो या राज्यारंभके समय—शकके शरीरजन्मका समय नहीं है। साथ ही, श्वेताम्बर भाइयोंने जो वीरनिर्वाणसे ४७० वर्ष बाद विक्रमका राज्याभिषेक माना है * और जिसकी वजहसे प्रचलित वीरनिर्वाणसंवत्में १८ वर्षके बढ़ानेकी भी कोई ज़रूरत नहीं रहती उसे क्यों ठीक न मान लिया जाय, इसका कोई समाधान नहीं होता। इसके सिवाय, जार्लचार्पेंटियरकी यह आपत्ति बराबर बनी ही रहती है कि वीरनिर्वाणसे ४७० वर्षके बाद जिस विक्रमराजाका होना बतलाया जाता है उसका इतिहासमें कहीं भी कोई अस्तित्व नहीं × है। परन्तु विक्रमसंवतको विक्रम-

---

* यथाः—विक्कमरज्जारंभा प(पु?)रओ सिरिवीरनिव्वुई भणिया।
सुन्न-मुणि-वेय-जुत्तो विक्कमकालाउ जिणकालो।
—विचारश्रेणि।

× इस पर बैरिष्टर के. पी. जायसवालने जो यह कल्पना की है कि सातकर्णि द्वितीयका पुत्र 'पुलमायि' ही जैनियोंका विक्रम है—जैनियोंने उस के दूसरे नाम 'विलवय' को लेकर और यह समझकर कि इसमें 'क' को 'ल' हो गया है उसे 'विक्रम' बना डाला है—वह कोरी कल्पना ही कल्पना जान पड़ती है। कहींसे भी उसका समर्थन नहीं होता। (बैरिष्टर सा०की इस कल्पनाके लिये देखो, जैनसाहित्यसंशोधकके प्रथम खंडका चौथा अंक)।

की मृत्युका संवत् मान लेने पर यह आपत्ति क़ायम नहीं रहती; क्योंकि जार्लचार्पेंटियरने वीरनिर्वाणसे ४१० वर्षके बाद विक्रम-राजाका राज्यारंभ होना इतिहाससे सिद्ध माना है *। और यही समय उसके राज्यारंभका मृत्युसंवत् माननेसे आता है; क्योंकि उसका राज्यकाल ६० वर्ष तक रहा है। मालूम होता है जार्लचार्पेंटियरके सामने विक्रमसंवत्के विषयमें विक्रमकी मृत्युका संवत् होनेकी कल्पना ही उपस्थित नहीं हुई और इसी लिये आपने वीर-निर्वाणसे ४१० वर्षके बाद ही विक्रम संवत्का प्रचलित होना मान लिया है और इस भूल तथा ग़लतीके आधार पर ही प्रचलित वीरनिर्वाण संवत् पर यह आपत्ति कर डाली है कि उसमें ६० वर्ष बढ़े हुए हैं। इस लिये उसे ६० वर्ष पीछे हटाना चाहिये—अर्थात् इस समय जो २४६० संवत् प्रचलित है उसमें ६० वर्ष घटाकर उसे २४०० बनाना चाहिये। अतः आपकी यह आपत्ति भी निःसार है और वह किसी तरह भी मान्य किये जानेके योग्य नहीं।

अब मैं यह बतला देना चाहता हूँ कि जार्ल चार्पेंटियरने, विक्रमसंवत्को विक्रमकी मृत्युका संवत् न समझते हुए और यह जानते हुए भी कि श्वेताम्बर भाइयोंने वीरनिर्वाणसे ४७० वर्ष बाद विक्रमका राज्यारंभ माना है, वीरनिर्वाणसे ४१० वर्ष बाद जो विक्रमका राज्यारंभ होना बतलाया है वह केवल उनकी निजी कल्पना अथवा खोज है या कोई शास्त्राधार भी उन्हें इसके लिये प्राप्त हुआ है। शास्त्राधार जरूर मिला है और उससे उन श्वेताम्बर विद्वानोंकी ग़लतीका भी पता चल जाता है जिन्होंने जिनकाल

* देखो, जार्लचार्पेंटियरका वह प्रसिद्ध लेख जो इन्डियन एण्टिक्वेरी (जिल्द ४३वीं, सन् १९१४) की जून, जुलाई और अगस्तकी संख्याओंमें प्रकाशित हुआ है और जिसका गुजराती अनुवाद 'जैनसाहित्यसंशोधक' के दूसरे खंडके द्वितीय अंकमें निकला है।

और विक्रमकालके ४७० वर्षके अन्तरकी गणना विक्रमके राज्याभिषेकसे की है और इस तरह विक्रमसंवत्को विक्रमके राज्यारोहण काही संवत् बतला दिया है। इस विषयका खुलासा इस प्रकार है:—

श्वेताम्बराचार्य श्रीमेरुतुंगने, अपनी 'विचारश्रेणि' में—जिसे 'स्थविरावली' भी कहते हैं, 'जं रयणिं कालगओ' आदि कुछ प्राकृत गाथाओंके आधार पर यह प्रतिपादन किया है कि—'जिस रात्रिको भगवान् महावीर पावापुरमें निर्वाणको प्राप्त हुए उसी रात्रिको उज्जयिनीमें चंडप्रद्योतका पुत्र 'पालक' राजा राज्याभिषिक्त हुआ, इसका राज्य ६० वर्ष तक रहा, इसके बाद क्रमशः नन्दोंका राज्य १५५ वर्ष, मौर्योंका १०८, पुष्यमित्रका ३०, बलमित्र-भानुमित्रका ६०, नभोवाहन (नरवाहन) का ४०, गर्दभिल्लका १३ और शकका ४ वर्ष राज्य रहा। इस तरह यह काल ४७० वर्षका हुआ। इसके बाद गर्दभिल्लके पुत्र विक्रमादित्यका राज्य ६० वर्ष, धर्मादित्यका ४०, भाइल्लका ११, नाइल्लका १४ और नाहडका १० वर्ष मिलकर १३५ वर्षका दूसरा काल हुआ। और दोनों मिलकर ६०५ वर्ष का समय महावीरके निर्वाण बाद हुआ। इसके बाद शकोंका राज्य और शकसंवत्की प्रवृत्ति हुई, ऐसा बतलाया है।' यही वह परम्परा और कालगणना है जो श्वेताम्बरोंमें प्रायः करके मानी जाती है।

परन्तु श्वेताम्बर-सम्प्रदायके बहुमान्य प्रसिद्ध विद्वान् श्रीहेमचन्द्राचार्यके 'परिशिष्टपर्व' से यह मालूम होता है कि उज्जयिनीके राजा पालकका जो समय (६० वर्ष) ऊपर दिया है उसी समय मगधके सिंहासन पर श्रेणिकके पुत्र कूणिक (अजातशत्रु) और कूणिकके पुत्र उदायीका क्रमशः राज्य रहा है। उदायीके निःसन्तान मारे जाने पर उसका राज्य नन्दको मिला। इसीसे परिशिष्टपर्वमें श्रीवर्द्धमान महावीरके निर्वाणसे ६० वर्षके बाद प्रथम नन्दराजाका

राज्याभिषिक्त होना लिखा है। यथाः—

अनन्तरं वर्धमानस्वामिनिर्वाणवासरात् ।
गतायां षष्ठिवत्सर्यामेष नन्दोऽभवन्नृपः॥६-२४३॥

इसके बाद नन्दोंका वर्णन देकर, मौर्यवंशके प्रथम राजा सम्राट् चंद्रगुप्तके राज्यारंभका समय बतलाते हुए, श्रीहेमचन्द्राचार्यने जो महत्वका श्लोक दिया है वह इस प्रकार है:—

एवं च श्रीमहावीरमुक्तेर्वर्षशते गते ।
पंचपंचाशदधिके चन्द्रगुप्तोऽभवन्नृपः ॥८-३३६॥

इस श्लोक पर जार्ल चार्पेंटियरने अपने निर्णयका खास आधार रक्खा है और डा० हर्मन जैकोबीके कथनानुसार इसे महावीर-निर्वाणके सम्बन्धमें अधिक संगत परम्पराका सूचक बतलाया है। साथ ही, इसकी रचना परसे यह अनुमान किया है कि या तो यह श्लोक किसी अधिक प्राचीन ग्रन्थ परसे ज्योंका त्यों उद्धृत कियागया है अथवा किसी प्राचीन गाथा परसे अनुवादित किया गया है। अस्तु; इस श्लोकमें बतलाया है कि 'महावीरके निर्वाणसे १५५ वर्ष बाद चंद्रगुप्त राज्यारूढ हुआ'। और यह समय इतिहासके बहुत ही अनुकूल जान पड़ता है। विचारश्रेणिकी उक्त कालगणनामें १५५ वर्षका समय सिर्फ नन्दोंका और उससे पहले ६० वर्षका समय पालकका दिया है। उसके अनुसार चंद्रगुप्तका राज्यारोहण-काल वीरनिर्वाणसे २१५ वर्ष बाद होता था परंतु यहाँ १५५ वर्ष बाद बतलाया है, जिससे ६० वर्षकी कमी पड़ता है। मेरुतुंगाचार्यने भी इस कमीको महसूस किया है परन्तु वे हेमचन्द्राचार्यके इस कथनको ग़लत साबित नहीं कर सकते थे और दूसरे ग्रंथोंके साथ उन्हें साफ़ विरोध नजर आता था, इसलिये उन्होंने 'तच्चिन्त्यम्' कहकर ही इस विषयको छोड़

दिया है। परंतु मामला बहुत कुछ स्पष्ट जान पड़ता है। हेमचंद्रने ६० वर्षकी यह कमी नन्दोंके राज्यकालमें की है--उनका राज्यकाल ९५ वर्षका बतलाया है--क्योंकि नन्दोंसे पहिले उनके और वीर-निर्वाणके बीचमें ६० वर्षका समय कूणिक आदि राजाओंका उन्होंने माना ही है। ऐसा मालूम होता है कि पहलेसे वीरनिर्वाण-के बाद १५५ वर्षके भीतर नन्दोंका होना माना जाता था परन्तु उसका यह अभिप्राय नहीं था कि वीर निर्वाणके ठीक बाद नन्दों-का राज्य प्रारंभ हुआ, बल्कि उनसे पहिले उदायी तथा कूणिकका राज्य भी उसमें शामिल था। परन्तु इन राज्योंकी अलग अलग वर्ष-गणना साथमें न रहने आदिके कारण बादको ग़लतीसे १५५ वर्षकी संख्या अकेले नन्दराज्यके लिये रूढ़ हो गई। और उधर पालक राजाके उसी निर्वाण-रात्रिको अभिषिक्त होनेकी जो महत्त्व एक दूसरे राज्यकी विशिष्ट घटना थी उसके साथमें राज्यकालके ६० वर्ष जुड़कर वह गलती इधर मगधकी काल गणनामें शामिल हो गई। इस तरह दो भूलोंके कारण कालगणनामें ६० वर्षकी वृद्धि हुई और उसके फलस्वरूप वीरनिर्वाणसे ४७० वर्ष बाद विक्रमका राज्याभिषेक माना जाने लगा। हेमचन्द्राचार्यने इन भूलोंको मालूम किया और उनका उक्त प्रकारसे दो श्लोकोंमें ही सुधार कर दिया है। बैरिष्टर काशीप्रसाद (के०पी०) जी जायसवालने, जार्ल चार्पें-टियरके लेखका विरोध करते हुए, हेमचन्द्राचार्य पर जो यह आपत्ति की है कि उन्होंने महावीरके निर्वाणके बाद तुरत ही नन्द-वंशका राज्य बतला दिया है, और इस कल्पित आधार पर उनके कथनको 'भूलभरा तथा अप्रामाणिक' तक कह डाला है * उसे

* देखो, बिहार और उडीसा रिसर्च सोसाइटीके जनरलका सितम्बर सन् १९१५का अङ्क तथा जैनसाहित्यसंशोधकके प्रथम खंडका ४था अंक।

देखकर बड़ा ही आश्चर्य होता है । हमें तो बैरिष्टर साहबकी ही साफ भूल नजर आती है। मालूम होता है उन्होंने न तो हेमचंद्र-के परिशिष्ट पर्वको ही देखा है और न उसके छठे पर्वके उक्त श्लोक नं०२४३ के अर्थ पर ही ध्यान दिया है, जिसमें साफ़ तौर पर वीरनिर्वाणसे ६० वर्षके बाद नन्द राजाका होना लिखा है। अस्तु; चन्द्रगुप्तके राज्यारोहण समयकी १५५ वर्पसंख्यामें आगेके २५५ वर्प जोड़नेसे ४१० हो जाते हैं, और यही वीरनिर्वाणसे विक्रमका राज्यारोहणकाल है। परंतु महावीरकाल और विक्रमकालमें ४७० वर्षका प्रसिद्ध अन्तर माना जाता है और वह तभी बन सकता है जब कि इस राज्यारोहणकाल ४१० में राज्यकालके ६० वर्ष भी शामिल किये जावें । ऐसा किया जाने पर विक्रमसंवत् विक्रमकी मृत्युका संवत् हो जाता है और फिर सारा ही झगड़ा मिट जाता है। वास्तवमें, विक्रमसंवत्को विक्रमके राज्याभिषेकका संवत् मान लेने की ग़लतीसे यह सारी गड़बड़ फैली है । यदि वह मृत्युका संवत माना जाता तो पालकके ६० वर्षोंको भी इधर शामिल होनेका अवसर न मिलता और यदि कोई शामिल भी कर लेता तो उसकी भूल शीघ्र ही पकड़ली जाती । परन्तु राज्याभिषेकके संवत्की मान्यताने उस भूलको चिरकाल तक बना रहने दिया । उसीका यह नतीजा है जो बहुतसे ग्रन्थोंमें राज्याभिषेक-संवत्के रूपमें ही विक्रमसंवत्का उल्लेख पाया जाता है और कालगणनामें कितनी ही गड़बड़ उपस्थित हो गई है, जिसे अब अच्छे परिश्रम तथा प्रयत्नके साथ दूर करनेकी जरूरत है।

इसी ग़लती तथा गड़बड़को लेकर और शककालविषयक त्रिलोकसारादिकके वाक्योंका परिचय न पाकर श्रीयुत एस. वी. वेंकटेश्वरने, अपने महावीर-समय-सम्बन्धी — The date of

Vardhamana नामक—लेख * में यह कल्पना की है कि महावीरनिर्वाणसे ४७० वर्ष बाद जिस विक्रमकालका उल्लेख जैन-ग्रंथोंमें पाया जाता है वह प्रचलित सनन्द-विक्रमसंवत् न होकर अनन्द-विक्रमसंवत् होना चाहिये, जिसका उपयोग १२वीं शताब्दी-के प्रसिद्ध कवि चन्दवरदाईने अपने काव्यमें किया है और जिसका प्रारंभ ईसवी सन् ३३ के लगभग अथवा यों कहिये कि पहले (प्रचलित) विक्रम संवत्के ९० या ९१ वर्ष बाद हुआ है। और इस तरह पर यह सुझाया है कि प्रचलित वीरनिर्वाणसंवत्मेंसे ९० वर्ष कम होने चाहियें—अर्थात् महावीरका निर्वाण ईसवी सन्से ५२७ वर्ष पहले न मानकर ४३७ वर्ष पहले मानना चाहिये, जो किसी तरह भी मान्य किये जानेके योग्य नहीं। आपने यह तो स्वीकार किया है कि प्रचलित विक्रमसंवत्की गणनानुसार वीर-निर्वाण ई० सन्से ५२७ वर्ष पहले ही बैठता है परंतु इसे महज़ इस बुनियाद पर असंभवित क़रार दे दिया है कि इससे महावीर-का निर्वाण बुद्धनिर्वाणसे पहले ठहरता है, जो आपको इष्ट नहीं। परन्तु इस तरह पर उसे असंभवित क़रार नहीं दिया जा सकता; क्योंकि बुद्धनिर्वाण ई० सन्से ५४४ वर्ष पहले भी माना जाता है, जिसका आपने कोई निराकरण नहीं किया। और इसलिये बुद्ध-का निर्वाण महावीरके निर्वाणसे पहले होने पर भी आपके इस कथनका मुख्य आधार आपकी यह मान्यता ही रह जाती है कि बुद्ध-निर्वाण ई० सन्से पूर्व ४८५ और ४५३ के मध्यवर्ती किसी समयमें हुआ है, जिसके समर्थनमें आपने कोई भी सबल प्रमाण उपस्थित नहीं किया और इसलिये वह मान्य किये जानेके योग्य

* यह लेख सन् १९१७ के 'जनरल आफ़ दि रायल एशियाटिक सोसाइटी' में पृ० १२२-३० पर, प्रकाशित हुआ है और इसका गुजराती अनुवाद जैनसाहित्यसंशोधकके द्वितीय खंडके दूसरे अङ्कमें निकला है।

नहीं। इसके सिवाय, अनंद-विक्रम-संवत्की जिस कल्पनाको आपने अपनाया है वह कल्पना ही निर्मूल है—अनन्दविक्रम नामका कोई संवत् कभी प्रचलित नहीं हुआ और न चन्दवरदाईके नामसे प्रसिद्ध होने वाले 'पृथ्वीराजरासे'में ही उसका उल्ले -
इस बातको जाननेके लिये रायबहादुर पं० गौरीशंकर हीराचन्दजी ओझाका 'अनन्द-विक्रम संवत्की कल्पना' नामका वह लेख पर्याप्त है जो नागरी प्रचारिणी पत्रिकाके प्रथम भागमें, पृ० ३७७ से ४५४ तक मुद्रित हुआ है।

अब मैं एक बात यहाँ पर और भी बतला देना चाहता हूँ और वह यह कि बुद्धदेव भगवान् महावीरके समकालीन थे। कुछ विद्वानोंने बौद्धग्रंथ मज्झिमनिकायके उपालिसुत्त और सामगाम-सुत्तकी* संयुक्त घटना को लेकर, जो बहुत कुछ अप्राकृतिक द्वेषमूलक एवं कल्पित जान पड़ती है और महावीर भगवानके साथ जिसका संबंध ठीक नहीं बैठता, यह प्रतिपादन किया है कि महावीरका निर्वाण बुद्धके निर्वाणसे पहले हुआ है। परन्तु वस्तुस्थिति ऐसी मालूम नहीं होती। खुद बौद्ध ग्रंथोंमें बुद्धका निर्वाण अजातशत्रु (कूणिक) के राज्याभिषेकके आठवें वर्ष बतलाया है; और दीघनिकायमें, तत्कालीन तीर्थंकरोंकी मुलाकातके अवसर पर, अजातशत्रुके मंत्रीके मुखसे निगंठ नातपुत्त (महावीर) का जो परिचय दिलाया है उसमें महावीरका एक विशेषण "अद्धगतो वयो" (अर्धगतवयाः) भी दिया है, जिससे यह स्पष्ट जाना जाता है कि अजातशत्रुको दिये जाने वाले इस परिचयके समय महावीर अधेड उम्रके थे, अर्थात् उनकी अवस्था ५० वर्षके लगभग थी। यह परिचय यदि अजातशत्रुके राज्यके प्रथम वर्षमें ही दिया गया हो,

* इन सूत्रोंके हिन्दी अनुवादके लिये देखो, राहुल सांकृत्यायन-कृत 'बुद्धचर्या' पृष्ठ ४४४, ४८१।

जिसकी अधिक संभावना है, तो कहना होगा कि महावीर अजातशत्रुके राज्यके २२वें वर्ष तक जीवित रहे हैं; क्योंकि उनकी आयु प्रायः ७२ वर्षकी थी। और इस लिये महावीरका निर्वाण बुद्ध-
गभग १४ वर्ष के बाद हुआ है। 'भगवतीसूत्र' आदि श्वेता[illegible] ग्रन्थोंसे भी ऐसा मालूम होता है कि महावीर-निर्वाणसे १६ वर्ष पहले गोशालक (मंखलिपुत्त गोशाल) का स्वर्गवास हुआ, गोशालकके स्वर्गवाससे कुछ वर्ष पूर्व (प्रायः ७ वर्ष पहले) अजातशत्रुका राज्यारोहण हुआ, उसके राज्यके आठवें वर्षमें बुद्धका निर्वाण हुआ और बुद्धके निर्वाणसे कोई १४–१५ वर्ष बाद अथवा अजातशत्रुके राज्यके २२वें वर्षमें महावीरका निर्वाण हुआ। इस तरह बुद्धका निर्वाण पहले और महावीरका निर्वाण उसके बाद पाया जाता है*। इसके सिवाय, हेमचन्द्राचार्यने चंद्रगुप्तका राज्यारोहण-समय वीरनिर्वाणसे १५५ वर्ष बाद बतलाया है और 'दीपवंश' 'महावंश' नामके बौद्ध ग्रन्थोंमें वही समय बुद्ध निर्वाणसे १६२ वर्ष बाद बतलाया गया है। इससे भी प्रकृत विषयका कितना ही समर्थन होता है और यह स्पष्ट जाना जाता है कि वीरनिर्वाणसे बुद्धनिर्वाण अधिक नहीं तो ७–८ वर्षके क़रीब पहले जरूर हुआ है।

बहुत संभव है कि बौद्धोंके सामगामसुत्तमें वर्णित निगंठ नातपुत्त (महावीर) की मृत्यु तथा संघभेद-समाचार वाली घटना मक्खलिपुत्त गोशालकी मृत्युसे संबंध रखती हो और पिटक ग्रंथोंको लिपिबद्ध करते समय किसी भूल आदिके वश इस सूत्रमें मक्खलिपुत्तकी जगह नातपुत्तका नाम प्रविष्ट हो गया हो; क्योंकि मक्खलिपुत्तकी मृत्यु—जो कि बुद्धके छह प्रतिस्पर्धी तीर्थंकरोंमेंसे

---

* देखो, जार्ल चार्पेंटियरका वह प्रसिद्ध लेख जिसका अनुवाद जैनसाहित्यसंशोधकके द्वितीय खंडके दूसरे अङ्कमें प्रकाशित हुआ है और जिसमें बौद्धग्रन्थकी उसघटना पर ख़ासी आपत्ति की गई है।

एक था—बुद्धनिर्वाणसे प्रायः एक वर्ष पहले ही हुई है और बुद्ध-का निर्वाण भी उक्त मृत्युसमाचारसे प्रायः एक वर्ष बाद माना जाता है। दूसरे, जिस पावामें इस मृत्युका होना लिखा है वह पावा भी महावीरके निर्वाणक्षेत्र-वाली पावा नहीं है, बल्कि . . . . पावा है जो बौद्ध पिटकानुसार गोरखपुरके जिलेमें स्थित कुशीनारा-के पासका कोई ग्राम है। और तीसरे, कोई संघभेद भी महावीरके निर्वाणके अनन्तर नहीं हुआ; बल्कि गोशालककी मृत्यु जिस दशा-में हुई है उससे उसके संघका विभाजित होना बहुत कुछ स्वाभा-विक है। इससे भी उक्त मृत्यु-समाचार-वाली घटनाका महावीरके साथ कोई सम्बंध मालूम नहीं होता, जिसके आधार पर महावीर-निर्वाणको बुद्धनिर्वाणसे पहले बतलाया जाता है।

बुद्धनिर्वाणके समय-सम्बंधमें भी विद्वानोंका मतभेद है और वह महावीर-निर्वाणके समयसे भी अधिक विवादग्रस्त चल रहा है परंतु लंकामें जो बुद्ध निर्वाणसंवत् प्रचलित है वह सबसे अधिक मान्य किया जाता है—ब्रह्मा, श्याम और आसाममें भी वह माना जाता है। उसके अनुसार बुद्धनिर्वाण ई० सन्से ५४४ वर्ष पहले हुआ है। इससे भी महावीरनिर्वाण बुद्धनिर्वाणके बाद बैठता है; क्योंकि वीरनिर्वाणका समय शकसंवत्से ६०५ वर्ष (विक्रमसंवत्-से ४७० वर्ष) ५ महीने पहले होनेके कारण ईसवी सनसे प्रायः ५२८ वर्ष पूर्व पाया जाता है। इस ५२८ वर्ष पूर्वके समयमें यदि १८ वर्ष की वृद्धि करदी जाय तो वह ५४६ वर्ष पूर्व होजाता है—अर्थात् बुद्धनिर्वाणके उक्त लंकामान्य समयसे दो वर्ष पहले। अतः जिन विद्वानोंने महावीरके निर्वाणको बुद्धनिर्वाणसे पहले मान लेनेकी वजहसे प्रचलित वीरनिर्वाणसंवत्में १८ वर्षकी वृद्धिका विधान किया है वह भी इस हिसाबसे ठीक नहीं है।

उपसंहार

यहाँ तकके इस संपूर्ण विवेचन परसे यह बात भले प्रकार स्पष्ट हो जाती है कि आज कल जो वीरनिर्वाणसंवत् २४६० प्रचलित है वही ठीक है—उसमें न तो बैरिष्टर के० पी० जायसवाल जैसे विद्वानोंके कथनानुसार १८ वर्षकी वृद्धि की जानी चाहिए और न जार्ल चार्पेंटियर जैसे विद्वानोंकी धारणानुसार ६० वर्षकी अथवा एस० वी० वेंकटेश्वरकी सूचनानुसार ९० वर्षकी कमी ही की जानी उचित है। वह अपने स्वरूपमें यथार्थ है। हाँ, उसे गत संवत् समझना चाहिये—जैनकाल गणनामें वीरनिर्वाणके गतवर्ष ही लिये जाते रहे हैं—ईसवी सन् आदिकी तरह वह वर्तमान संवत्का द्योतक नहीं है। क्योंकि गत कार्तिकी अमावस्याको शकसंवत्के १८५४ वर्ष ७ महीने व्यतीत हुए थे और शकसंवत महावीरके निर्वाणसे ६०५ वर्ष ५ महीने बाद प्रवर्तित हुआ है, यह ऊपर बतलाया जा चुका है; इन दोनों संख्याओंके जोड़नेसे पूरे २४६० वर्ष होते हैं। इतने वर्ष महावीरनिर्वाणको हुए गत कार्तिकी अमावस्याको पूरे हो चुके हैं और गत कार्तिकशुक्ला प्रतिपदासे उसका २४६१ वाँ वर्ष चल रहा है। यही आधुनिक संवत्-लेखन पद्धतिके अनुसार वर्तमान वीरनि० संवत् है। और इसलिये इसके अनुसार महावीरको जन्म लिये हुए २५३१ वर्ष बीत चुके हैं और इस समय गत चैत्रशुक्ला त्रयोदशी (वि० सं० १९९० शक सं० १८५५) से, आपकी इस वर्षगाँठका २५३२ वाँ वर्ष चल रहा है और जो समाप्तिके क़रीब है। इत्यलम्।

जुगलकिशोर मुख़्तार

हमारे खुद के छपाए जैन ग्रन्थ

बालक भजन संग्रह—मास्टर भूरालाल मुशरफ, प्रथम भाग -)॥
द्वितीय =)॥ तृतीय -)॥ चतुर्थ -)॥
जगदीश विलास भजनमाला ५४ लावनी भजन मूल्य चार आना
दास पुष्पाञ्जली—ला० अयोध्याप्रसाद गोयलीय के जोर
भजन मूल्य चार आना
दास कुसमाञ्जली „ „ १६ भजन मूल्य एक आना
बारहमासा मनोरमा सतीका—भोलानाथ मुख्तार नाथकवि मू०)॥
पचबाल ब्र०तीर्थंकरोंकी पूजा— „ „ „ -)
व्यापार ज्ञानप्रकाश—मास्टर चाँदूलाल टोंग्या „ =)
मेरी भावना— पं० जुगलकिशोर मुख्तार „)॥
भगवान महावीर और उनका समय— „ ।)
भक्तामरस्तोत्र संस्कृत, भाषा, महावीराष्टक सहित „ -)।
मोक्षशास्त्र— „ -)॥
अग्रवाल वंशावली (उर्दू)—समेरचन्द अग्रवाल „ =)
जैनला (कानून) उर्दू—चम्पतरायजी बैरिस्टर „ १)

अन्य पुस्तकें—

श्रीपालनाटक—मोटे टाइप के १५४ पृष्ठों में „ १)
„ „ (उर्दू) „ १)
समाधि शतक टीका—ब्र० शीतलप्रसादजी मूल्य १)
जैनागार प्रक्रिया—बाबा दुलीचन्दजी „ ३॥)
जैन इतिहास (उर्दू)—प्रभूदयाल तहसीलदार „ १।
हनुमान चरित्र—अंग्रेजी „ „ =)
मुकद्दमा जैनमत समीक्षा उर्दू (आर्यसमाज के साथ) „ ।)

पता—हीरालाल पन्नालाल जैन, दरीबा कलां देहली।

धर्म मा[illegible]यें कोई–

पर,

पढ़ लीजिये सब

जैनधर्म कुछ भी हो, विचारपूर्ण है। उसमें बहुत
कुछ है जो पढ़ने, मनन करने, मानने
और पालने लायक़ है। यह

अहिंसा का धर्म है

और

अहिंसा विश्व का धर्म होना चाहिये।

हमसे कुछ इस धर्मका पुष्ट और जीवित साहित्य लीजिये
और आत्म लाभ कीजिये।